हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर सीरीज नं० ६।

चौबेका चिट्ठा।

प्रकाशक—

...थ-रत्नाकर कार्यालय।

चौबेका चिट्ठा ।

स्वर्गीय बाबू बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके
'कमलाकान्तेर दफ्तर' का
हिन्दी अनुवाद ।

अनुवादकः

श्रीयुक्त पण्डित रूपनारायण पाण्डेय ।

प्रकाशकः

हिन्दीग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।

द्वितीयावृत्ति] भाद्र १९७४ । अगस्त १९१७ । [मूल्य बारह आने ।

कपड़ेकी जिल्दका १=)

Printed by Dayabhai Sankarbhai at the Satya Prakash Press, Khadia, Ahmedabad from 1 to 176 pages and the remaining by G. N. Kulkani, at the Karnatak Press, 434 Thakurdwar, Bombay and Published by Nathuram Premi, Proprietor, Hindi Granth Ratnakar Karyalaya, Hirabag, Bombay.

भूमिका ।

ग्रन्थकार ।

स्वर्गीय, बंगसाहित्यके सूर्य, प्रखर प्रतिभाशाली, बाबू बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय, रायबहादुर, सी. आई. ई. के नामको हमारे हिन्दी पढ़ने-लिखनेवाले भाई भी बहुत अच्छी तरह जानते हैं । बंकिम बाबूकी रत्नप्रसू लेखनीसे निकले हुए कई उपन्यासों और निम्बन्धोंके भाषान्तर इस समय हिन्दी पाठकोंके आगे उपस्थित हैं। यह पुस्तक भी बाबूसाहबके 'कमलाकान्तेर दफ्तर' का रूपान्तर है ।

बाबू बङ्किमचन्द्र उस समय हुए जिस समय हिन्दी–साहित्यके पोषक और उसको गति देनेवाले बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु अपनी सहृदयता, चातुरी और अनुभवसे भरी हुई निर्मल प्रतिभामयी प्रभासे हिन्दीसाहित्यका मुख उज्ज्वल कर रहे थे । अभी बहुत समय नहीं हुआ जब बंगला भी हिन्दीकी तरह हीन अवस्थामें थी । जैसे कुछ अँगरेजी पढ़े लिखे उच्च उपाधिकारी पुरुष हिन्दीसे घृणा रखते हैं, डरते हैं कि यदि हम हिन्दीमें अपने विचार प्रकट करेंगे–इष्टमित्रों और 'मान्यवरों' को हिन्दीमें पत्र लिखेंगे तो गँवार समझे जायँगे, क्योंकि हिन्दी गँवारोंकी भाषा है, वैसे ही उस ससय बंगालका हाल था। लेकिन बंकिम बाबूने उस समय प्रकट होकर बंगभाषाके साहित्यमें वह अमृत सींचा कि अब वह अमर होकर दिन दिन, केवल बंगालियोंको ही नहीं बल्कि भारतके कई प्रान्तोंके आदरकी सामग्री हो रहा है ।

बंगभाषाके सपूतोंमें उस समय कैसी हवा चल रही थी, इसको बतलानेके लिए हम यहाँपर केवल एक घटनाका उल्लेख करेंगे । बाबू रमेशचन्द्रदत्तका नाम या योग्यता भारतमें ही नहीं विलायत तक प्रसिद्ध है । रमेश बाबू जो कुछ लिखते थे सो सब अँगरेजीमें ही। बंकिमबाबूने एक बार रमेशबाबूसे कहा–"आप अँगरेजीमें बहुत कुछ लिखा करते हैं, मैं आपसे मातृभाषामें भी कुछ लिखते रहनेके लिए अनुरोध करता हूँ ।" रमेशबाबूने उत्तर दिया–"मुझे खेद है कि मातृभाषामें लिखनेका मुझे अभ्यास नहीं । मैं जो कुछ सोचता विचारता या लिखता हूँ सब अँगरेजीमें ।" बङ्किमबाबूने कहा–"आपका यह कहना सन्तोषजनक नहीं । आप जो लिखेंगे वही सुलिखित होगा । मातृभाषामें लिखने पढ़नेके लिए अभ्यासकी आवश्यकता नहीं, योग्यता चाहिए।" इसका फल यह हुआ कि रमेशबाबूने बंगलामें कई ऐसे ग्रन्थ लिखे जो इस समय बड़े ही आदरकी दृष्टिसे देखे जाते हैं ।

बंकिमबाबूने अपने निवासस्थान काँटालपाड़ामें 'बंगदर्शन प्रेस' स्थापित कर उससे बंगदर्शन नामका मासिकपत्र निकालना शुरू किया। बांकिमबाबू चार भाई थे और चारों साहित्यानुरागी तथा प्रतिभाशाली थे। बंकिमबाबूकी मित्रमण्डलीमें बाबू हेमचन्द्र उनके प्रधान मित्र थे । ये बंगभाषाके एक भारी कवि हो गये हैं। बंकिमबाबूके समसामयिक कई उत्कृष्ट लेखक बंगदर्शनमें लिखते थे। बंगदर्शनके लेख इतने अच्छे, उपादेय और मनोहर होते थे कि उसकी कोई संख्या निकलनेमें दो एक दिनकी देर भी पाठकोंको अधीर कर देती थी। बंकिमबाबू छह वर्षतक उसके सम्पादक रहे। उसके बाद उन्होंने बंगदर्शन अपने भाईके सम्पादकत्वमें छोड़ दिया। यद्यपि इस समय बंगलामें अच्छे अच्छे मासिकपत्र सचित्र और उच्चश्रेणीके निकलते हैं तथापि उस विचित्र बंगदर्शनकी छटा किसीमें देखनेको नहीं मिलती और इन सब पत्रोंका प्रचार अधिक होनेपर भी इनका बंगदर्शनके समान आदर या गौरव नहीं है। उसी बंगदर्शनमें "कमलाकान्त" यह कल्पित नाम देकर बंकिमबाबूने कई निबंध लिखे थे। उन्हीं निबन्धोंका संग्रह 'कमलाकान्तेर दफ्तर' है।

ग्रन्थ।

जो लोग असाधारण बुद्धिशक्ति लेकर पृथ्वीपर आते हैं उनकी दृष्टि अवश्य ही अपने समाज पर पड़ती है। यदि समाजमें उनको कुछ बुराइयाँ, हानिकारक प्रवृत्तियोंकी प्रबलता या अधःपतनके कारण देख पड़ते हैं तो वे उन्हें दूर करनेके लिए अपनी असाधारण शक्तिका प्रयोग करते हैं। यह बात पृथ्वीमण्डलके हरएक देशमें समानरूपसे देखी जाती है। लोग समय समय पर प्रकट होकर समाजचक्रकी चूलमें तेल डालकर उसे उन्नतिके पथमें चलाते और अपना नाम इतिहासमें अमर कर जाते हैं।

समाजकी बुराइयों या बुरे झुकावको फेरनेके लिए दो ही उपाय काममें लाये जाते हैं--(१) वक्तृता देना और (२) लिखना। यद्यपि वक्तृता देकर समाज पर प्रभाव डालना भी अधिक कठिन है तथापि कई कारणोंसे लिखकर समाजको सुधारनेकी चेष्टामें सफलता प्राप्त करना अत्यंत ही कठिन है। इसके लिए असाधारण प्रतिभा और प्रभाव डालनेवाली विलक्षण शक्ति चाहिए। इसीसे किसीने कहा है--"शतं वद मा लिख।" इसके सिवा वक्तृताका असर अल्पकालस्थायी होता है, किन्तु लेखका असर चिरस्थायी होता है। इस कारण वक्तृताकी अपेक्षा लेख लिखना अधिक महत्त्वका काम है। हम यहाँ पर साधारणतः लेखके विषयमें ही कुछ लिखनेकी चेष्टा करते हैं।

लेख लिखकर मनुजी महराजकी तरह प्रत्यक्ष रूपसे विधि-निषेधकी शिक्षा देना उतना कठिन काम नहीं है, और सच पूछो तो उसका असर भी बिगड़े हुए समाज पर पूरा नहीं पड़ता। ऐसी शिक्षा देनेमें बहुज्ञताकी अधिक आवश्यकता रहने पर भी प्रतिभाकी वैसी आवश्यकता नहीं रहती। फल भी प्रायः उलटा ही होता है। प्रायः देखा गया है कि जिस कामके करनेमें बाधा दी जाती है या मना किया जाता है उसे करनेके लिए और भी आग्रह होता है--और भी उत्तेजना बढ़ती है!

यही कारण है कि जो असामान्य प्रतिभाशाली लेखक होते हैं वे अप्रत्यक्ष रूपसे शिक्षा देते हैं और उनकी शिक्षा साहित्यकी एक अंग बन जाती है। कभी कभी वे हास्य-रसका आश्रय लेकर सामाजिक, नैतिक और धार्मिक कुरीतियोंका संशोधन करनेकी चेष्टा करते हैं। हास्यरस भी नव रसोंमेंसे एक रस है और यही एक ऐसा रस है जिसका उपयोग इस कार्यमें विशेषतासे होता है। हास्यरसका उपयोग भी कई तरहसे किया जाता है। एक तो हास्य तीव्र-विद्रूपमय होता है। पर अच्छे लेखक उसे अच्छा नहीं समझते। उस तीव्र-विद्रूपमय हँसीसे प्रायः मनोरंजन ही होता है, असल उद्देश्यकी सिद्धि न होकर वैर-विरोध ही अधिक बढ़ता है। जो अच्छे लेखक हैं उनके हास्यरसपूर्ण शिक्षाप्रद लेख तीव्र विद्रूपमय न होकर मीठी चुटकी लेनेवाले होते हैं। वे कड़ुआ काढ़ा न देकर शक्करमें लिपटी हुई क्वीनाइनकी गोली देते हैं। उस गोलीको रोगी मजेमें निगल जाता है और शीघ्र ही आरोग्य हो जाता है। उनके लेखोंके ऊपर विमल हास्य रसकी झलक अवश्य होती है, लेकिन स्थिर दृष्टिसे भीतर तक देखने पर उसमें बिगड़े हुए समाजको अपनी बुराइयोंका प्रतिबिम्ब और लेखकी मर्मवेदना स्पष्ट देख पड़ती है। फल यह होता है कि समाजके वे लोग जिन पर लेख होता है, लज्जित-सचेत होकर अपनी बुराइयोंको आप छोड़ देते हैं।

ऐसे लेख लिखना साधारण काम नहीं है। ऐसे लेख लिखनेके लिए चाहिए समाजकी भीतरी तह तक पहुँचनेवाली सूक्ष्मदृष्टि, विचारशक्ति और अलौकिक प्रतिभा। जिनमें ये बातें नहीं है वे बालसुलभ हँसी मजाकके चुटकिले भले ही लिख लें, पर उनसे सुधार करनेका काम कदापि नहीं हो सकता। यहाँ पर ऐसी शैलीके दो उदाहरण हम देंगे। बंगालमें एक बड़े भारी नैयायिक पण्डित थे। उनके किसी विद्यार्थीने अपने सहपाठीको कोई गाली दी। पण्डितजी दूर थे। पर उन्होंने उसे सुन लिया। पण्डितजीने उस समय तो कुछ नहीं कहा, पर एक दिन, जब कि वही गाली देनेवाला विद्यार्थी साथ था, घरके भीतर

जाते समय राहमें बैठे हुए कुत्तेसे कहा–"महाशय, तनिक हट जाइए।" विद्यार्थीसे न रहा गया–उसने कहा, "पण्डितजी, कुत्तेसे इस तरह कहनेकी क्या आवश्यकता थी ?" पण्डितजीने कहा—"भैया, कुत्तेको भी गाली देना उचित नहीं है। कुत्तेको तो गाली या स्तुतिका ज्ञान नहीं है, मगर अपनी जबान तो इसी तरह खराब हो जाती है।" उस दिन वह विद्यार्थी इतना लज्जित हुआ कि फिर उसने कभी किसीको गाली नहीं दी। इसी तरह हमारी महारानी विक्टोरियाका एक नौकर था, जो पीछे उनकी नकल किया करता था। महारानीको किसी तरह यह मालूम हो गया। उन्होंने एक दिन उस नौकरसे कहा–"मुझे नहीं मालूम कि मैं किस तरह चलती हूँ—जरा तुम मेरी तरह चलो तो मैं देखूँ।" महारानीके इस कथनका उस पर इतना असर पड़ा कि उसने उसी दिनसे अपनी वह बुरी आदत छोड़ दी।

बाबू बंकिमचंद्रके ये निबन्ध भी इसी ढँगके हैं। इसमें कोई कोई निबन्ध तो अवश्य ऐसे हैं जो हास्यरसके लेख कहे जा सकते हैं—उनमें भीतर गूढ व्यङ्ग्य और शिक्षा रहने पर भी ऊपर हास्यरस लहरा रहा है, लेकिन कुछ निबन्ध ऐसे भी हैं, जिनमें हास्यरसका आभास भी नहीं है, उनमें केवल लेखककी उत्कट देशभक्ति, हार्दिक उच्छ्वास और मर्मभेदी हृदयके भाव भरे हुए हैं। 'एकटि गात,' 'दुर्गापूजा' आदि निबन्ध ऐसे ही हैं।

अँगरेजीमें डिकेंस, मोलिये आदि लेखकोंने इस ढँगके अनेक निबन्ध और नाटक लिखे हैं। पर बँगलामें बंकिमबाबू ही इस ढंगके लेखक हुए हैं, या यों कहना चाहिए कि बंकिमबाबूने ही अपने इस ढंगमें सफलता पाई है। मराठी गुजराती भाषाओंमें कोई इस ढंगका लेखक हुआ है या नहीं,सो तो हम नहीं जानते, लेकिन हिन्दीमें अभी इस ढंगका कोई सिद्धहस्त लेखक नहीं हुआ। हिन्दीमें इस ढंगके लेखक क्या, कोरे हास्यरसके लेखकोंका भी एक प्रकारसे अभाव ही है।

यह तो ऊपर ही कहा जा चुका है कि बंकिमबाबूकी इस निबन्धावलीमें हास्यरस प्रधान नहीं, गौणरूपसे कहीं कहीं झलकता है। इसी कारण हम इस निबन्धमालाको हास्यरसके लेख कहना ठीक नहीं समझते। हमारी समझमें ये निबन्ध हास्यमिश्रित गद्य-काव्य कहे जा सकते हैं। इनमें काव्यके सब अंग मौजूद हैं। इनमें अलौकिक प्रतिभा, कल्पना, चमत्कार, रस और शिक्षा है। ये पढ़ते ही असर डालनेवाले हैं–अधमसे उत्तम बनानेवाले हैं। इनमें कविके कौशल, कल्पना और लिखनेके ढंगको देखकर सहृदय पुरुषको वही मजा मिलता है जो एक अच्छे उँचे दर्जेके कविकी कविता पढ़नेमें मिल सकता है। अतएव यह गद्यकाव्य है

और इसके लेखक बाबू बंकिमचन्द्र एक बहुत ऊँचे दर्जेके भावुक कवि थे—इसमें कमसे कम हमको कुछ भी सन्देह नहीं है।

हिन्दी अनुवाद।

अब हम इस हिंदी अनुवादके सम्बन्धमें कुछ कहकर अपना वक्तव्य समाप्त करेंगे। किसी भाषासे दूसरी भाषामें कोई ग्रन्थ लिखना बड़ा ही कठिन काम है। खासकर ऐसे ग्रन्थका अनुवाद करके मूलकी सरसता और चमत्कार बनाये रखना असम्भव ही है। हमने यथाशक्ति ऐसी चेष्टा की है कि पाठकोंको अनुवादमें मूलका ही मजा आवे—मूलग्रन्थकारके भाव बिगड़ने न पावें, भाषाकी सरसता नष्ट न हो, शाब्दिक चमत्कार कम न हो। किन्तु इसमें हम कहाँ तक सफलता पा सके हैं सो हमारे बंगला जाननेवाले पाठक मूलसे अनुवादको मिला कर ही जान सकते हैं।

यहाँपर हम यह भी कह देना उचित समझते हैं कि यह अनुवाद एकदम अनुवाद ही नहीं है। हमने इसे वर्तमान समयानूकूल (up-to-date) बनानेकी पूरी चेष्टा की है। इस चेष्टामें कहीं पैरेके पैरे बढ़ा देने पड़े हैं और कहीं कुछ छोड़ भी देना पड़ा है। इसके सिवा बंकिमबाबूने बंगाल और बंगालियोंको लक्ष्य करके ही ये निबन्ध लिखे थे; परन्तु हमने इनका भाषान्तर समग्र भारत और भारतवासियोंको लक्ष्य करकें किया है। ऐसा करनेमें भी बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा है। बहुतसी बुराइयाँ, बातें और कहावतें इसमें ऐसी थीं जो केवल बंगाल और बंगालियोंसे ही सम्बन्ध रखती हैं; उनकी जगह पर वैसी ही बातें और कहावतें, जो भारत भरसे—भारतवासियों भरसे—सम्बन्ध रखती हैं, खोजकर रखनी पड़ी हैं।

हिन्दीमें इस ढंगका कोई ग्रन्थ न देखकर हमने इस ग्रन्थरत्नका हिन्दी भाषान्तर करके हिन्दी साहित्यसेवियोंके सेवामें समुपस्थित किया है। हमको पूर्ण आशा है कि यह ग्रन्थ पढ़कर हिन्दीभाषाभाषी लाभ उठावेंगे। केवल इतना ही न होगा बल्कि इसी शैलीके आदर्शपर हमारी मातृभाषाके सपूत सेवक सज्जन इसी ढंगके मौलिक ग्रन्थ लिखकर हिन्दीसाहित्यके एक विभागकी पूर्ति करते हुए हिन्दीका गौरव बढ़ावेंगे।

दारागंज प्रयाग,
वैशाख कृष्णा ११, मंगलवार
संवत् १९७१ वैक्रमीय।

रूपनारायण पाण्डेय।

निवेदन।

लगभग सवातीन वर्षके बाद इस ग्रन्थकी यह दूसरी आवृत्ति प्रकाशित की जाती है। अबकी बार इसकी जितनी अच्छी छपाई होनी चाहिए थी उतनी नहीं होसकी, इसके लिए हम पाठकोंसे क्षमा चाहते हैं। हिन्दीसे अनभिज्ञ प्रेसमें छपनेके कारण इस आवृत्तिमें संशोधनकी ओर पूरा ध्यान देने पर भी यदि कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों, तो उन पर अधिक ध्यान न देनेके लिए प्रार्थना है।

—प्रकाशक।

सूची।

चौबेजीका परिचय।

बहुतसे लोग चिदानन्दको पागल कहते थे। उसकी चित्तवृत्ति कुछ विलक्षण ही प्रकारकी थी। उसकी बातचीत, कामकाज, रहन–सहन आदि सबही बातें अनोखी थीं। यह बात नहीं है कि वह कुछ लिखा पढ़ा नहीं था। नहीं, उसे कुछ अँगरेजी और कुछ संस्कृत आती थी। किन्तु जिस विद्यासे अर्थोपार्जन न हो, वह विद्या किस कामकी? उसे मैं विद्या ही नहीं कहता। चाहे कोई कैसा ही मूर्ख क्यों न हो, भले ही उसे लिखने पढ़नेके नाम केवल अपने दस्तखत करना ही आते हों; किन्तु यदि उसकी साहब–सूबाओंतक पहुँच हो और झूठी सच्ची बातें बनाकर उसे अपना काम निकलना आता हो, तो मेरी समझमें वह पण्डित है और चिदानन्द जैसा विद्वान्, जिसने दश बीस पुस्तकें पढ़ लीं हों, बिलकुल मूर्ख है।

चिदानन्दको एक बार नौकरी मिल गई थी। एक साहब बहादुरने उसकी अँगरेजी बातचीत सुनकर अपने आफिसमें क्लर्क रख लिया था। परन्तु चिदानन्दसे यह क्लर्की न हुई। वह आफिसमें जाकर आफिसका काम न करता था। आफिसके रजिष्टरोंमें कविता लिखता था, आफिसकी चिट्ठियोंमें 'सेक्सपियर' नामक किसी लेखकके वचन लिख रखता था और बिल-बुकोंके पेजों पर चित्र बनाया करता था।

एक बार साहबने उससे माहबारी पे-बिल बनानेके लिए कहा। चिदानन्दने बिलबुक पर एक चित्र बनाकर तैयार कर दिया। उसका भाव यह था कि बहुतसे भिक्षुक साहबसे भिक्षा माँग रहे हैं और साहब बहादुर उनके आगे दो दो चार चार पैसे फेंक रहे हैं! चित्रके नीचे लिखा था–"वास्तविक पे-बिल।" साहबने इस अतिशय नूतन 'पे-बिल' को देखकर चौबेजीको उसी दिन अपने यहाँसे बिन कुछ कहे सुने बिदा कर दिया!

बस, चिदानन्दकी चाकरीका अन्त हो गया। इसके बाद उसने और कोई नौकरी न की। जरूरत भी न थी। शादीके फन्देमें तो वह कभी फँसा ही नहीं। जहाँ रहता था वहाँ यदि भरपेट भोजन और लोटाभर भंग मिल गई तो फिर उसे और किसी चीजकी दरकार न रहती थी। उसके रहनेका ठिकाना न था, जहाँ तहाँ पड़ा रहता था। कुछ दिन वह मेरे घर भी रहा था। पागल समझकर मैं उस पर दया करता था। किन्तु मैं भी उसे बहुत दिन न रख सका। कहीं स्थायी होकर रहना उसके स्वभावमें ही न था। एक दिन वह सबेरे उठा और ब्रह्मचारीके समान गेरुए कपड़े पहनकर न जाने कहाँ चला गया। बहुत ढूँढ़ खोज की, परन्तु फिर उसका पता न चला।

उसके पास कागजोंका एक बस्ता था। कहीं कोई कोरा या अधलिखा कागज मिला कि वह उसपर कुछ न कुछ लिखनेके लिए बैठ जाता था। क्या लिखता था सो वह जाने या परमात्मा जाने; मैं कुछ भी न समझता था। जब कभी मौज आती थी, तो वह मुझे भी अपना लिखा हुआ सुनाने लगाता था। मैं कौतूहलवश उसे सुनना अवश्य चाहता था; परन्तु कुछ सुननेके पहले ही मुझे नींद आ जाती थी! उसके उक्त सब कागज एक फटे पुराने और स्याही-

चित्रित कपड़ेमें बँधे रहते थे। यही उसका बस्ता था। जिस समय वह गया उस समय यह बस्ता मुझे दे गया और कह गया कि यह मैंने तुम्हें इनाममें दिया !

इस अमूल्य रत्नको लेकर मैं क्या करूँ ! पहले इच्छा हुई कि इसें अग्निदेवको समर्पण कर दूँ, परन्तु पीछे मेरे हृदयमें लोकहितैषिता जाग्रत हो उठी। मैंने सोचा कि जो पुरुष संसारका उपकार नहीं करता है उसका जन्म व्यर्थ है। इस बस्तेमें अनिद्रा रोगकी अत्युत्कृष्ट औषध है--इसे जो पढ़ेगा उस पर तत्काल ही निद्रा देवीकी कृपा होगी। इसलिए जो लोग अनिद्रा रोगसे पीड़ित हैं, उनके उपकारके लिए मैं चिदानन्द चौबेके इस बस्तेको प्रकाशित करता हूँ।

मुझे अनुप्राससे बहुत प्रेम है। अनुप्रासहीन रचना कैसी ही भावपूर्ण क्यों न हो मुझे अच्छी नहीं लगती। प्रकाशित करते समय 'चौबेका बस्ता' नाम मेरे कानोंमे बहुत खटका। तब मैंने बहुत कुछ सोच विचारकर इसका नया नामकरण किया–'चौबेका चिट्ठा' या 'चिदानन्द चौबेका चिट्ठा।'

खुशनबीस।

चौबेका चिट्ठा।

वह कौन गाता है ?

कोई गाता चला जा रहा है। बहुत समयसे भूले हुए सुखस्वप्नकी स्मृतिकी तरह उस मधुर गीतने मेरे कानोंमें प्रवेश किया। गीत कुछ बहुत सुन्दर नहीं है। पथिक अपनी उमंगसे राह चलते चलते गाता जा रहा है। चाँदनी रात देखकर उसके हृदयका आनन्द उमड़ आया है। उसका कण्ठ स्वभावहीसे मधुर है—वह उसी अपने मधुर कण्ठसे मधुमास (चैत) में सुखपूर्वक माधुरी बरसाता हुआ जा रहा है। तो फिर सितारपर अँगुली फेरनेसे जैसे उसके सब तार झनझना उठते हैं उसी तरह इस गीतने अपने स्पर्शसे मेरी हृदय-तन्त्रीको क्यों बजा दिया ?

क्यों, इसका समाधान कौन करेगा ? चाँदनी रात है—नदीकी रेतीमें चाँदनी हँसते हँसते लोट रही है। नीली साड़ीसे जिसका आधा अँग ढका हुआ हो उस सुन्दरीकी तरह शीर्ण शरीरवाली नील-जल-मयी नदी उस रेतीको घेरे हुए बहती चली जा रही है। सड़क पर आनन्द ही आनन्द दिखाई देता है—लड़की, लड़के, जवान, औरत—मर्द प्रौढा, और बुड्ढी स्त्रियाँ, सब निर्मल उज्ज्वल चन्द्रमाकी किरणोंमें नहाकर आनन्द मना रहे हैं। मैं ही केवल आनन्दसे खाली हूँ—इसी कारण शायद इस संगीतसे मेरे हृदयकी वीणा यों बज उठी है।

मैं अकेला हूँ—इसी कारण यह गीत सुनकर मेरे शरीरमें रोमाञ्च हो आया। इस बहुत आदमियोंसे भरी—पूरी नगरीमें—इस आनन्दपूर्ण मनुष्य-प्रवाहमें मैं अकेला हूँ। तो फिर मैं भी इस अनन्त मनुष्य-प्रवाहमें मिलकर इन विशाल आनन्द-तरंग-ताड़ित जलके बुद्बुदोंमें और एक बुद्बुदा क्यों न बन जाऊँ? बूँद बूँद पानीसे ही तो समुद्र बना है, मैं भी एक बूँद हूँ, फिर इस समुद्रमें मिल क्यों न जाऊँ?

इच्छा होने पर भी इस समुद्रमें क्यों नहीं मिल जाता—सो मैं नहीं जानता, केवल यही जानता हूँ कि मैं अकेला हूँ। मेरा तो यही उपदेश है कि भैया, इस संसारमें 'अकेले' होकर न रहना। अगर अन्य किसीने तुमसे 'प्यार' न पाया, तो तुम्हारा मनुष्यजन्म ही वृथा हुआ। फूलमें सुगन्ध है। लेकिन अगर कोई उसे सूँघनेवाला न होता तो फूल सुगन्धित नहीं कहला सकता था। क्योंकि सूँघनेवालेके सिवा सुगन्धके अस्तित्वका प्रमाण ही और क्या था? देखो, फूल अपने लिए नहीं फूलते। तुम भी अपने हृदयकी कलीको दूसरोंके लिए प्रफुल्लित करो।

पर यह तो मैंने अभीतक बतलाया ही नहीं कि केवल एक बार सुनते ही यह गीत क्यों इतना मनोहर मधुर जान पड़ा। बहुत दिनोंसे मैंने आनन्दकी उमंगसे गाया गया गीत नहीं सुना था, बहुत दिनोंसे ऐसे आनन्दका अनुभव मेरे मनने नहीं किया था। जवानीमें, जब सारी पृथ्वी सुन्दर थी, जब हर फूलमें सुगन्ध मिलती थी, हर पत्तेकी खड़कनमें मधुर रागिनी सुन पड़ती थी, हर नक्षत्रमें चित्रा-रोहिणीकी शोभा देख पड़ती थी, हर आदमीके मुख पर सरलता और विश्वासका आभास पाया जाता था, तब आनन्द था। पृथ्वी अब भी वही है, संसार अब भी वही है, लोक-चरित्र अब भी वही है, किन्तु यह हृदय अब वह नहीं रहा। उस समय गीत सुनकर जो आनन्द होता था,

वही आनन्द इस समय यह गीत सुनकर याद आ गया है। जिस अवस्था और जिस सुखमें मैं उस समय आनन्दका अनुभव करता था वही अवस्था—वही सुख इस समय याद आ गया है। घड़ी भरके लिए जैसे मुझे फिर वही जवानी मिल गई। पहलेकी तरह फिर जैसे, मन-ही-मन, जमी हुई मित्रमण्डलीमें जा बैठा, और पहलेकी तरह वैसे ही अकारण ऊँचे स्वरसे हँसने लगा। जिन बातोंको अब मैं व्यर्थ समझकर इस समय नहीं कहता, उन बातोंको उस समय चित्त चञ्चल होनेके कारण दिनमें दस बार कहा करता था; उन्हीं बातोंको मानों फिर कहने लगा। मानों फिर पहलेकी तरह सरल सच्चे हृदयसे दूसरोंके स्नेहको सच्चा समझकर स्वीकार करने लगा। मुझे क्षणभरके लिए भ्रम या मोह हो गया—इसीसे यह गीत इतना मधुर मालूम पड़ा। केवल यही कारण नहीं है। पहले गीत अच्छे लगते थे—अब नहीं लगते। जिस चित्तकी प्रफुल्लता या प्रसन्नताके कारण गाना अच्छा लगता था, वह प्रफुल्लता अब नहीं है, इसीसे गाना भी अच्छा नहीं लगता। मैं इस समय गीत सुननेके पहले अपने मनके अतीत इतिहासमें मन लगाकर जवानीके सुखका ध्यान कर रहा था। इसी समय यह पूर्वस्मृतिकी सूचना देनेवाला गीत सुन पड़ा;—और इसी कारण मुझे इतना मधुर जान पड़ा।

वह प्रफुल्लता और वह सुख अब क्यों नहीं है? क्या सुखकी सामग्री कम हो गई है? या अब मैं ही नीरस हो गया हूँ? संग्रह और क्षय, दोनों ही संसारके नियम हैं। किन्तु उसके साथ ही यह भी नियम है कि क्षयकी अपेक्षा संग्रह अधिक होता है। तुम अपने जीवनमार्गमें जितना आगे बढ़ोगे उतना ही अपने लिए सुख-सामग्री संग्रह करोगे। अच्छा तो फिर अवस्था अधिक होने पर इन्द्रियोंमें

शिथिलता क्यों आजाती है? पृथ्वी वैसी सुन्दर क्यों नहीं देख पड़ती? आकाशके तारे वैसे क्यों नहीं चमकते? आकाशकी नीलिमामें वैसी उज्ज्वलता (चमक या कान्ति) क्यों नहीं रहती? जो स्थान उस समय तृण-पल्लव-पूर्ण, फूलोंकी सुगन्धसे सने, स्वच्छ नदीसे जलकण लेनेके कारण सुशीतल हुए वायुसे हृदयको हरा कर देनेवालेसे जान पड़ते थे; वे ही स्थान इस समय रेतीली मरुभूमिके समान उजाड़ क्यों जान पड़ते हैं? समझा; आशारूपी रंगीन चश्मा न होनेके कारण ही यह सब विपरीत दिखाई दे रहा है। जवानीमें संचित सुख थोड़ा होता है, किन्तु सुखकी आशा अपरिमित होती है। इस समय संचित सुख तो अधिक है, किन्तु वह ब्रह्माण्ड-व्यापिनी आशा कहाँ है? तब नहीं जानता था कि कैसे क्या होता है, इसीसे अनेक आशायें करता था। अब जान पड़ा है, कि इस संसारचक्रमें चढ़नेवालेको फिर वहीं लौट जाना पड़ता है, जहाँसे वह चलता है। जिस समय वह सोचता है कि मैं आगे बढ़ता हूँ उस समय वह केवल चक्कर ही खाता है। अब समझमें आया है कि संसारसागरमें तैरते समय हमें उसकी लहरें टक्करें मारकर किनारे फेंक जाती हैं। अब मालूम हुआ है कि इस जंगलमें राह नहीं है, इस मैदानमें कोई जलाशय नहीं है, इस नदीका पार नहीं है, इस समुद्रमें टापू नहीं है, इस अन्धकारमें नक्षत्रोंका भी प्रकाश नहीं है। अब जान पड़ा है कि फूलमें कीड़े हैं, कोमल पत्तोंमें काँटे हैं, आकाशमें मेघ हैं, निर्मल नदीमें भँवरें हैं, फलमें विष हैं, बागमें साँप हैं, मनुष्यके हृदयमें केवल आत्मप्रेम है। अब विदित हुआ है कि हर एक वृक्षमें फल नहीं होते, हर एक फूलमें सुगन्ध नहीं होती, हर एक बादल बरसता नहीं, हर एक बनमें चन्दन नहीं होता और हर एक हाथीके मस्तकमें गजमुक्ता नहीं होती। अब समझा है कि काँच भी

हीरेकी तरह उज्ज्वल होता है, पीतल भी सोनेकी तरह चमकता है, कीचड़ भी चन्दनकी तरह गीला होता है, और काँसा भी चाँदीकी तरह मधुर शब्द करता है।--किन्तु क्या कहता था, भूल गया। हाँ, वही गीतकी ध्वनि। वह भली अवश्य जान पड़ी थी, मगर अब उसे फिर दुबारा सुनना नहीं चाहता। इस मनुष्यकण्ठसे निकले हुए संगीतके समान संसारमें एक और भी संगीत है,—संसाररसके रसिक लोग ही उसे सुन पाते हैं। इस समय वही संगीत सुननेके लिए मेरा चित्त आकुल हो रहा है। इस संगीतको क्या न सुन पाऊँगा? सुनूँगा, अब इस अनेक बाजोंकी ध्वनिमें मिले हुए और बहुत कण्ठोंसे उत्पन्न हुए संसारसंगीतको न सुनकर उसी संगीतको सुनूँगा। अब न वे पहलेके गानेवाले हैं—न वह अवस्था है और न वह 'आशा' ही है। किन्तु, इससे मैं दुःखी नहीं हूँ,—अब उस संसारसंगीतके बदले जो संगीत सुन रहा हूँ, वह उससे बढ़कर प्रसन्नता देनेवाला है। इस समय जिस संगीतसे मेरे कान तृप्त हो रहे हैं, उसमें अन्य किसी बाजेका शब्द नहीं है।

'प्रीति' इस संसारमें सर्वव्यापिनी है—प्रीति ही ईश्वर है। प्रीतिका ही संगीत इस समय मेरे कानोंमें भरा हुआ है। मैं चाहता हूँ कि अनन्त काल तक इस प्रीति या प्रेमके संगीतसे मिलकर मनुष्य-समाजके हृदयकी वीणा बजती रहे। यदि मनुष्यजाति पर मेरा प्रेम बना रहे तो फिर मैं और सुख नहीं चाहता।

मनुष्य–फल।

जब भंगकी मात्रा कुछ अधिक हो जाती है–गहरी छन जाती है, तब मुझे संसारके सब मनुष्य तरहतरहके फल जान पड़ते हैं; वे मायारूपी डंठलमें लगे हुए संसारके महावृक्षमें लटक रहे हैं, पकते ही गिर पड़ेंगे। उनमेंसे सभी नहीं पकने पाते--कुछ असमयमें आँधीसे कच्चे ही झड़ जाते हैं, कुछमें कीड़े लग जाते हैं, कुछको पक्षी कुतर जाते हैं और कुछ यथा-समय पक जाने पर तोड़ लिये जाते हैं। जो पकने पर तोड़ लिये जाते हैं और गंगाजलसे धुलकर देवों या ब्राह्मणोंके काम आते हैं उन्हींका फलजन्म या मनुष्ययोनि सार्थक है। पकेहुए फल कुछ ऐसे भी होते हैं जो खूब पककर आप-ही-आप ऊँची डालसे पृथ्वीमें गिर पड़ते हैं और उनको सियार खाते हैं। उनका फलजन्म या मनुष्य-योनि वृथा है। कुछ फल तीखे कड़ुए या कसैले होते हैं–किन्तु उनसे अच्छी अच्छी दवायें बनती हैं। कुछ बिल्कुल जहरीले होते हैं, जो खाता है वही मरता है। और कुछ कुँदरूकी जातिके होते हैं, जो केवल देखने भरके सुन्दर होते हैं।

मुझे कभी नशेमें ऊँघते ऊँघते देख पड़ता है कि भिन्न भिन्न जातिके लोग भिन्न भिन्न जातिके फल हैं। मुझे आजकलके 'बड़े आदमी' कटहल मालूम पड़ते हैं। कुछ उसमें बड़े बड़े कीए--के होते हैं, कुछमें रेशा अधिक होता है, और कुछ ऐसे होते हैं कि उनके भीतर ढेरसी लकड़ी ही लकड़ी होती है; वे केवल पशु-ओंके काम आते हैं। कुछ तो डालमें पकते हैं और कुछ डालमें ही लगे रहते हैं–कभी पकते नहीं। कुछ ऐसे होते हैं जो पकें तो पक

सकते हैं; किन्तु पकने नहीं पाते; पृथ्वीका राक्षस उनको कच्चेपनहीमें तोड़कर तरकारी बनाकर खाजाता है । अगर वे पकें भी तो सियार बड़ा उपद्रव मचाते हैं । अगर पेड़ चारों ओरसे रुँधा हो, या कटहल ऊँची डालमें फला हो तब तो खैर है; नहीं तो सियारलोग उसे अवश्य नोच खायँगे । सियारोंमें कोई दीवान, कोई मुसाहब, कोई कारिंदा, कोई मुनीम, कोई गुमाश्ता और कोई केवल आशीर्वाद देनेवाले होते हैं । यदि इन सबके हाथोंसे बचकर पका कटहल किसी तरह घर पहुँच गया, तो वहाँ मक्खियाँ भन भन करने लगती हैं । मक्खियाँ कटहल नहीं चाहतीं, वे चाहती हैं उसका रस । यह मक्खी कन्याका ब्याह करना चाहती है—कुछ सुभीता नहीं है, जरासा रस दो। वह मक्खी अपने मा-बापकी 'गया' करना चाहती है, एक बूँद रस दो । इस मक्खीने एक पुस्तक लिखी है, इसको कुछ रस दो । उस मक्खीने पेट पालनेके लिए एक समाचारपत्र निकाला है, उसको भी कुछ रस दो । यह मक्खी कटहलकी बुआके जेठके लड़केके सालेकी साली है—खानेका सुभीता नहीं है, कुछ रस दो। उस मक्खीने एक पाठशाला खोली है, उसमें पौने चौदह लड़के पढ़ते हैं, कुछ रस दो । इधर कटहलको घरमें रख छोड़ना भी ठीक नहीं—सड़कर उससे दुर्गन्ध फैलेगी । मेरी राय तो यही है कि कटहलको काट कर उसकी उत्तम निर्जल दूधमें खीर बनाकर चिदानन्द चौबे ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको भोजन करा देना ही उचित है ।

इस देशकी सिविलसर्विसके साहबोंको मैं आमका फल समझता हूँ । कुछ लोगोंका कहना है कि आम इस देशमें नहीं होता था; समुद्रपारसे कोई महात्मा इस फलको इस देशमें लाये थे। आम देखनेमें रंगीन और सुन्दर होते हैं । कच्चे तो बहुत ही खट्टे होते हैं,

हाँ, पकने पर अवश्य मीठे हो जाते हैं; मगर तब भी भीतर, गुठली पर, खटाई (तुर्शी) बनी ही रहती है—वह नहीं जाती। कोई कोई आम तो ऐसे वाहियात होते हैं कि पकने पर भी उनकी खटाई नहीं जाती; मगर देखनेमें ऐसे बड़े और रंगीन होते हैं कि बेचनेवाले ग्राहकको ठगकर पचीस रुपये सैकड़े तक बेच जाते हैं। कुछ आम ऐसे होते हैं कि कच्चे रहने पर मीठे और पक जाने पर फीके होजाते हैं। बहुतसे अधपके ही रहते हैं। उनको कूटकर नमक मिलाकर 'कचूमर' बना डालना ही अच्छा है।

सब लोग आम खाना नहीं जानते। तुरन्त डालसे तोड़कर खाना ठीक नहीं—उनमें गर्मी भरी रहती है। इनको या तो पाल रखकर, और या, जो डालसे टूटे आये हों उनको, कुछ देर सलामके पानीमें ठंडा करके, अगर हो सके तो उस पानीमें थोड़ासा खुशामदका बर्फ भी डाल कर, फिर छुरी चलाकर मजेमें खाना चाहिए।

संसारमें साधारणतः स्त्रियोंकी उपमा केलेके फलसे दी जाती है। लेकिन यह ठीक नहीं। मुझे केलेके फलमें और भुवनमोहिनी स्त्रियोंमें कुछ भी समता नहीं देख पड़ती। स्त्रियाँ क्या गौधकी गौध एक साथ फलती हैं? अगर किसीके भाग्यमें फलती हों तो फलती हों, परन्तु चिदानन्दके भाग्यमें तो कभी नहीं फलीं। केलेके साथ स्त्रियोंका इतना ही मेल है कि दोनों ही वानरोंको प्रिय होती हैं—रुचती हैं। केवल एक इसी बातसे मैं कामिनियोंकी तुलना केलेसे करना उचित नहीं समझता। इसके सिवा कुछ ऐसे भी कटुभाषी लोग हैं जो स्त्रियोंकी तुलना कुँदरूके साथ करते हैं। ऐसा जो कहते हैं वे 'जलमुहे' हैं। मैं तो सुन्दरियोंका दासानुदास हूँ; मैं नहीं कह सकता।

मैं कहता हूँ कि स्त्रियाँ इस संसारमें नारियलके फल हैं। नारियल

भी एक एक डालमें गुच्छेके गुच्छे फलते हैं, परन्तु (व्यापारियोंको छोड़ कर) कोई भी उनके गुच्छेके गुच्छे नहीं तोड़ता। कोई कभी एका-दशी व्रतके भोर पारण करनेके लिए, अथवा वैशाखमें ब्राह्मण-सेवाके लिए एक आध तोड़ लेता है। एक साथ गौधकी गौध गिराकर खानेका अपराध करनेवाले अगर कोई हैं तो वे कुलीन ब्राह्मण*हैं। चिदानन्दसे कभी ऐसा अपराध नहीं बन पड़ा।

वृक्षके नारियलोंकी तरह संसारके इन नारियलोंकी भी अवस्था-भेदके अनुसार कई हालतें होती हैं। बिलकुल कच्ची अवस्थामें दोनोंका हृदय बहुत ही स्निग्ध× होता है। नारियलके जलसे कलेजा तर होता है, और किशोरीकामिनीके सच्चे और भोग-विलासके लक्षणोंसे शून्य स्नेहके रससे हृदय स्निग्ध होता है। किन्तु दोनों जातिके—मनुष्यजाति और फलजातिके—नारियल कच्चे ही अच्छे होते हैं। उस समय वे उज्ज्वल श्यामल फल कैसे सुन्दर जान पड़ते हैं—उनमें कैसी ज्योति (कान्ति और चमक) होती है! उनसे रुका हुआ ताप (घाम और दुःख) भीतर नहीं आने पाता। जगत्का ताप मानों उस नवीन श्याम शोभामें ठंडा पड़ जाता है। मुझे झरोखेमें झुंडकी झुंड स्त्रियाँ पेड़में गुच्छेके गुच्छे नारियलोंसी जान पड़ती हैं। दोनों ही चारों ओर अपनी छटा—अपना प्रकाश फैलाते हैं। मगर देखो, इन्हें देख-कर भूलना नहीं—इस चैतके घाममें पेड़से कच्चे नारियलको कभी न तोड़ना; इस समय उसमें गर्मी भरी रहती है। जिसने संसारकी

---

* बंगालके कुलीन ब्राह्मण पहले एक साथ दस दस बीस बीस ब्याह कर लिया करते थे। ब्याह ही उनकी जीविका थी। लेकिन अब यह बात शिक्षाप्रचारके साथ साथ कम होती जाती है।

× स्नेहसे भरा और तर।

शिक्षा नहीं प्राप्त की, ऐसी कच्ची बालिकाको हृदयमें स्थान मत देना; नहीं तो तुम्हारे हृदयमें ज्वाला पैदा हो जायगी। आमकी तरह कच्चे नारियलको भी खुशामद-रूपी बर्फके पानीमें रखकर ठंडा कर लेना। बर्फ न हो सके तो तालाबकी कीचड़में ही कुछ देर गाड़कर ठंडा कर लेना—अर्थात् मीठी बातोंसे न हो सके तो चिदानन्द चतुर्वेदीकी आज्ञा है कि कड़ाईसे ठंडा कर लेना।

नारियलमें चार चीजें होती हैं—पानी, गिरी, नरेटी (लकड़ीका खोल) और जटा। मेरी समझमें नारियलका पानी और स्त्रियोंका स्नेह, दोनों बराबर हैं—दोनोंके द्वारा हृदय शीतल होता है, और दोनों ही भीतर छिपे हुए रहते हैं। जब तुम संसारकी तपनमें तप-कर हाँफते हाँफते घरकी छाँहमें विश्रामकी इच्छा करो, तब इस ठंडे पानीको अवश्य पियो—उसी दम तुम्हारा हृदय शीतल हो जायगा। सोचो तो, तुम्हारे गरीबीके चैतमें या बन्धु-वियोगके वैशाखमें, तुम्हारी जवानीके दोपहरमें अथवा रोग-ताप-पूर्ण तीसरे पहरमें तुम्हारा हृदय और काहेसे शीतल हो सकता है? जीवनके सन्ताप-समयमें माताके आदर-यत्न, स्त्रीके प्रेम और कन्याकी भक्तिके सिवा और काहेसे सुख मिल सकता है? और ग्रीष्मकी गर्मीमें, कच्चे नारियलके जलके सिवा और किस चीजसे ठंडक पड़ सकती है?

परन्तु नारियल पक जाने पर उसका पानी कुछ तीखा हो जाता है। मोहनकी माकी उमर पकने पर मोहनका बाप इसी तीखेपनके कारण घर छोड़कर चला गया। यही कारण ही कि नारियलोंमें कच्चे नारियलका ही आदर होता है।

नारियलकी गिरी और स्त्रियोंकी बुद्धि एक सी होती है। बिल्कुल कच्चेपनमें तो नाममात्रको रहती है, परन्तु उसके बाद किशोर अव-

स्थामें बड़ी ही मीठी और बड़ी ही कोमल होती है। फिर पकजाने पर बहुत ही कठिन हो जाती है; किसकी ताकत है जो उसको दाँतोंसे फोड़ सके? उस समय इसे गृहिणी-पना कहते हैं। गृहिणी--पनेमें रस और मिठास अवश्य होती है, मगर उसमें किसीका दाँत नहीं लग सकता। एक तरफ कन्या बैठी है, वह चाहती है कि माताके गहनोंके सन्दूकमेंसे कुछ गहने प्राप्त करूँ—मगर पकी गिरी ऐसी कठिन है कि उसमें कन्याका दाँत लग न सका—पकी गिरी अर्थात् पुरखिनने आप ही दया करके उस सन्दूकमेंसे एक बाली निकाल कर दे दी। एक तरफ पुत्र बैठा हुआ पकी हुई माताकी पूँजीपर दाँत लगाना चाहता है—पुरखिन माताने बड़ी दया करके उसे एक दो रुपये दे दिये। स्वामीने बुढ़ापेमें कुछ रोजगार करनेका विचार किया, लेकिन उस समय हाथ खाली है, रुपयेके बिना रोजगार नहीं हो सकता-उनकी भी दृष्टि उसी पुरखिनकी पूँजी पर पड़ी। उन्होंने दो-चार 'प्रवृत्ति'के दाँत पकी गिरीमें लगाये, पर बुढ़ापेके कमजोर दाँत टूट गये। अगर किसी तरह दाँत गड़ भी गये, तो फिर नारियलको हजम कर जानेकी शक्ति कहाँ? जब तक पति-देवता रुपये फेर कर नहीं देते तब तक उन्हें अजीर्णके रोगसे रातको नींद नहीं आती!

इसके बाद नारियलकी नरेटीको लीजिए। इसे स्त्रियोंकी विद्या कहनी चाहिए। मुझे तो यह अधूरीके सिवा पूरी कभी नहीं देख पड़ी। नारियलकी नरेटी किसी बड़े काममें नहीं लगती। स्त्रियोंकी विद्या भी प्रायः ऐसी ही होती है। मेरी समरबिलने विज्ञानकी पुस्तक लिखी है। जार्ज इलियटने उपन्यास लिखे हैं। इस देशकी कुछ स्त्रियोंने भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं। पुस्तकें बुरी नहीं हुईं; किन्तु उनमें नरेटीसे

अधिक उपयोगिता नहीं आई, अर्थात् वे नरेटीसे बढ़कर काम नहीं दे सकतीं।

पर अब समय बदला है। चतुर कारीगर नरेटीसे भी सुन्दर प्याले, कीमती बटन और मनोहर खिलौने आदि बढ़ियाँ बढ़ियाँ सामान तैयार करने लगे हैं। यूरोप और अमेरिकाकी स्त्रियोंकी विद्यासे भी बहुतसे काम होने लगे हैं।

किन्तु नरेटीमें नोक निकली हो या उसकी धार तेज हो तो उसकी चोटसे लोहूलुहान हो सकता है। इंग्लैंडकी मताभिलाषिणी स्त्रियोंकी विद्या भी नुकीली होनेसे—उसकी धार तेज होनेसे इस समय यही काम कर रही है। वे पार्लियामेंट पर चढ़ाई करती हैं—ईंट पत्थर फेकती हैं—प्रधान मन्त्रीको मारती पीटती हैं, और बड़ी बड़ी लाखोंकी इमारतोंको पल भरमें 'डिनामाईट'से उड़ा देती हैं।

नारियलकी जटा, स्त्रियोंका रूप है। जटा नारियलके बाहरकी चीज है, वैसे ही रूप भी स्त्रियोंके शरीरमें बाहर रहता है। दोनोंमें कुछ सार नहीं, इन्हें तज देना ही अच्छा है। हाँ, नारियलकी जटा एक काम आती है—उससे अच्छे मजबूत रस्से बनते हैं, और उनसे बड़े बड़े जहाज बाँधे जाते हैं। स्त्रियोंके रूपकी रस्सीसे भी अनेक जहाज बाँधे जाते हैं। तुम लोग जैसे नारियलके रस्सोंसे जगन्नाथ-जीका रथ खींचते हो, वैसे ही स्त्रियाँ भी अपनी रस्सीसे बड़े बड़े मनोरथ खींचती हैं। जब रथ खींचना रोकनेके लिए कोई कानून बने तो उसमें इस मनोरथ खींचनेको रोकनेके लिए एक 'दफा' जरूर रहनी चाहिए। ऐसा होगा तो इससे होनेवाली अनेक हत्यायें बंद हो जायँगी। यह तो मुझे मालूम नहीं कि नारियलकी रस्सीमें गला फँसाकर कभी किसीने जान दी है या नहीं, मगर यह मैं जरूर जानता

हूँ कि स्त्रियोंके रूपकी रस्सीमें गला फँसा कर इतने लोगोंने प्राण दिये हैं कि उनकी गणना नहीं हो सकती।

वृक्षके नारियलों और संसारके नारियलोंसे मेरी अनबनका कारण यही है कि मैं अभागा दोमेंसे एकको भी प्राप्त नहीं कर सका। और फल तो नीचे खड़े रहकर लग्गीसे खींचकर गिरा लिये जासकते हैं, पर नारियल पेड़ पर चढ़े बिना हाथ नहीं लगसकता। अगर पेड़ पर चढ़नेकी चेष्टा करोगे तो या तो अपने पैरोंमे रस्सी बाँधनी पड़ेगी और या डोमकी * खुशामद करनी पड़ेगी।

मैं डोमकी खुशामद करनेके लिए भी राजी हूँ। मगर किया क्या जाय, मेरे भाग्यमें नारियल बदा ही नहीं। मैं जैसा आदमी हूँ, वैसे ही पेड़में वैसे ही रूप-गुणकी लग्गीसे नारियलको पासकता हूँ। पासकता हूँ, लेकिन खटका यह है कि नारियल कहीं मेरे सिर पर न आपड़े। ऐसी बहुतसी धन्नो, मुन्नो, काली, गौरी हैं जो चिदानन्दको अपना स्वामी बनाकर ग्रहण कर सकती हैं। किन्तु पराई लड़कीको सिर चढ़ाकर संसारकी यात्रा करनेमें यह गरीब ब्राह्मण सर्वथा असमर्थ है। यही कारण है कि अबकी बार चिदानन्दने भक्तिके साथ नारियलका फल विश्वनाथको अर्पण कर दिया। वे एक तो मसानमें रहते हैं, और उस पर विष भी पी लिया है—यह कच्चा नारियल उनका क्या बिगाड़ सकता है?

इस देशमें एक तरहके आदमी आजकल दिखलाई दिये हैं, जिनको साधारणतः 'देशहितैषी' कहते हैं। इनको मैं सेमरका फूल

---

* जान पड़ता है चिदानन्द पुरोहितको डोम कहता है! क्योंकि पुरोहित ही ब्याह कराता है। उः! कैसा बदमाश है!

मदारीलाल।)

समझता हूँ। जब सेमरमें फूल फूलतें हैं तब देखनेमें वे बड़े सोहावने जान पड़ते हैं—बड़े बड़े लाल लाल फूलोंसे पेड़की बड़ी शोभा होती है। पर मेरी दृष्टिसे तो सेमरके गंजे पेड़में इतनी ललाई अच्छी नहीं जान पड़ती। वह कुछ पत्तोंसे ढकी रहती तो अच्छी मालूम पड़ती। पत्तोंके भीतरसे जो थोड़ी थोड़ी ललाई देख पड़ती है वही सुन्दर जान पड़ती है। फूलमें सुगन्धका नाम नहीं, कोमलताका लेश नहीं, किन्तु तो भी वह बड़ा बड़ा लाल लाल होता है। अगर फूल गिरनेपर उनमें फल आते हैं तो मैं समझता हूँ कि अब कुछ लाभ होगा। किन्तु तब भी कुछ लाभ नहीं देख पड़ता। धीरे धीरे चैतका महीना आने पर घामकी कड़ी आँचमें वे भीतरके ओछे फल 'फट-फट' करके झड़ पड़ते हैं और उनके भीतरसे जरासी रुई निकलकर सारे देशमें उड़ी उड़ी फिरती है।

संस्कृतके धुरन्धर पंडित और शास्त्री मेरी समझमें धतूरेके फल हैं। बड़े बड़े वचनों और लम्बे लम्बे समासोंके रूपमें उनके लम्बे लम्बे फूल फूलते हैं; परन्तु फलके समय वे ही काँटेदार धतूरे देख पड़ते हैं। मेरी बहुत दिनोंसे इच्छा थी कि मैं सभ्यशिरोमणि अँगरेजोंके साथ भोजन करके अपने ब्राह्मणजन्मको सफल करूँ; पर इन अधम धतूरोंके काँटोंके मारे कुछ न कर सका। धतूरेमें गुण अगर होता है तो यही कि वह नशीली चीजोंके नशेको और भी बढ़ा देता है। यदि किसी गाँजा पीनेवालेको दम मारनेमें नशा नहीं होता तो वह उसमें दो चार धतूरेके बीज मिला लेता है। किसी भंग पीनेवालेको नशा नहीं होता तो वह उसमें धतूरेके बीज मिलाकर पीता है। जान पड़ता है इसी खयालसे कुछ उपदेशक लोग अपने व्याख्यानोंमें और कुछ हिन्दी-लेखक लोग अपने लेखोंमें इन पण्डितों और शास्त्रियोंके

'व्यवस्था'-वाक्य*उद्धृत कर दिया करते हैं। लेख और व्याख्यान-के गाँजे और भंगमें पण्डित शास्त्रियोंके वाक्य-रूप धतूरेके बीज मिल जानेसे पढ़ने और सुननेवालोंका नशा खूब जम जाता है। इसी नशेमें आजकल सारा देश मतवाला हो रहा है।

अपने देशके लेखकोंको मैं इमली समझता हूँ। इनकी अपनी सम्पत्ति या पूँजी तो बस वही खटाई-ही-खटाई होती है; किन्तु यदि ये दूधको भी स्पर्श कर लेते हैं तो या तो फाड़कर बेकाम कर देते हैं, और या खट्टा दही बना डालते हैं। इनमें गुण कुछ है तो वही खटाई, और वह भी बहुत खराब खटाई। इसके सिवा इनमें एक गुण और भी है; वह यह कि ये साक्षात् जड़ काष्ठका अवतार होते हैं। इमलीका काठ नीरस होता है, इसी कारण समालोचनाकी आगमें जलता भी खूब है। सच कहनेमें डर काहेका, बात तो यह है कि इमलीके बराबर खराब चीज मुझे संसारमें और नहीं देख पड़ती। जो थोड़ी सी भी खा लेता है उसे अजीर्ण हो जाता है और खट्टी डकारें आने लगती हैं। जो अधिक खा लेता है उसे तो सदा अम्लपित्तका रोग बना रहता है। जो लोग साहब बन गये हैं और टेबिल-कुर्सी लगा कर गैस या बिजलीकी रोशनीमें करीमबख्श खानसा-माके हाथका पकाया हुआ खाना छुरी-काँटेसे खाना सीख गये हैं वे एक कठिनाईके हाथसे छुटकारा पागये हैं—इमलीकी खटाईकी उन्हें कुछ पर्वाह नहीं रहती—उन्हें आदिसे अन्त तक इमलीकी चटनीके साथ रोटी नहीं खानी पड़ती। किन्तु जिन्हें छप्परके नीचे बैठकर रामदेईके हाथकी रसोई खानी पड़ती है उनके कष्टका कुछ ठिकाना

---

* किसी विषयमें उस विषयके विद्वान् पण्डितकी सम्मतिको 'व्यवस्था-वाक्य' कहते हैं।

नहीं है। रामदेई कुलीनकी लड़की है, नित्य सबेरे नहाती है, रामनामी दुपट्टा ओढ़ती है, हाथमें तुलसीकी माला लिये रहती है; किन्तु मूँग, अरहरकी दाल, भात, और चटनीके सिवा कुछ बनाना नहीं जानती। करीमबख्श, जातिका तो नीच है, मगर रसोई ऐसी बनाता है कि उसका स्वाद अमृतका ऐसा होता है। *

अब बस एक प्रकारके और मनुष्यफलकी बात कह कर आज इस लेखका समाप्त कर दूँगा। अच्छा बतलाओ, ये देशी हाकिम किस जातिके फल हैं? जिसको क्रोध करना हो करे, मैं तो सच ही कहूँगा। ये लोग संसारके कुम्हड़े (कद्दू) हैं; इन्हें अगर छप्पर पर चढ़ा दो तो ये ऊँचे पर फलेंगे, नहीं तो नीचे मिट्टी पर ही पड़े पड़े लोटा करेंगे। जहाँ चाहो इन्हें डाल दो—उठा दो, मगर जहाँ जरा आँधी चली, बेलसे टूट टूट कर जमीनमें लोटने लगेंगे। बहुतसे तो रूपमें भी कद्दू हैं और गुणमें भी कद्दू हैं। कुम्हड़े या कद्दू आजकल

---

* चिदानन्दका मतलब यह है कि यद्यपि अँगरेजीका साहित्य अँगरेजोंकी रचना है—जिन्हें हम जातिकी दृष्टिसे नीचा समझते हैं—मगर है वह अमृतके समान सरस, उपादेय और जीवनदान करनेवाला। और हमारे वर्तमान देशी साहित्यकी रचना यद्यपि उच्च जातिके लोगोंके हाथसे होती है, मगर वह इमलीके समान दाँत खट्टे कर देनेवाला, हानिकारक और इधर उधरसे चुराया हुआ ही बहुधा होता है। ऐसे लेखकोंके पास गाँठकी पूँजी तो कुछ होती नहीं, और दूसरोंसे जो लेते हैं उसे भी विकृत कर देते हैं! जो लोग अँगरेजी नहीं जानते उन्हें उसीसे अपनी जिज्ञासा शान्त करनी पड़ती है; और जो अँगरेजी जानते हैं वे मजेसे अँगरेजी साहित्यका स्वाद लेते हैं।

दो तरहके होते हैं, देशी और विलायती । विलायती कहनेसे यह न समझ लेना कि ये कुम्हड़े विलायतसे आये हैं । आजकल जैसे देशी मोचीके बनाये जूते अँगरेजी बूट कहलाते हैं वैसे ही ये विलायती कुम्हड़े भी हैं । यह कहनेकी तो कोई जरूरत ही नहीं कि विलायती कुम्हड़ोंकी कदर ज्यादा होती है ।

संसारके बगीचेमें और भी अनेक फल फलते हैं, उनमें सबसे बढ़कर निकम्मा निकृष्ट और कडुआ फल है,—चिदानन्द चतुर्वेदी ।

[1]यूटिलिटी या पेट-दर्शन ।

बेन्थाम साहब हितवाददर्शनकी सृष्टि करके यूरोपमें अक्षय कीर्ति छोड़ गये हैं ।

मैं उस हितवाददर्शनको नापसन्द नहीं करता, और न उसका विरोधी ही हूँ; बल्कि अनुमोदन करता हूँ; परन्तु आपको मालूम

१ यूटिलिटी शब्दके क्या माने हैं ? मैं खुद अँगरेजी नहीं जानता—चिदानन्दने भी कुछ नहीं बतलाया--इसी लिए लाचार मैंने अपने पुत्रसे पूछा । मेरे पुत्रने डिक्शनरी खोलकर देखकर यह अर्थ बतलाया है—' यू ' शब्दका अर्थ है तुम या तुम लोग । ' टिल ' शब्दका अर्थ है खेती करना । 'इट' शब्दका अर्थ है खाना । 'ई' शब्दका क्या अर्थ है, सो वह कुछ बतला नहीं सका । मेरी समझमें चिदानन्दका मतलब यह है कि तुम सब लोग खेती करके खाओ । कैसा पाजी है ! सबको किसान कह दिया । ऐसे दुष्ट दशानन लंबोदर गजाननकी रचना पढ़नेमें भी पाप होता है ।

होना चाहिए कि मैं भी एक सुयोग्य दार्शनिक हूँ। मैंने उसी हितवाददर्शन के आधार पर, उसे कुछ घटा-बढ़ा कर एक नवीन दर्शनशास्त्रकी रचना की है। वास्तवमें देखा जाय तो यह मेरी रचना भारतमें प्रचलित हितवाद-दर्शनकी एक नई व्याख्या मात्र है। यहाँ पर मैं उसका मर्म संक्षेपमें स्थूलरूपसे लिखे देता हूँ। यह दर्शन प्राचीन प्रथाके अनुसार सूत्रोंमें लिखा गया है; और मैंने आप ही उन सूत्रोंकी व्याख्या (भाष्य) भी लिख दी है। सूत्रोंकी रचना हिन्दीमें ही की गई है; इससे कोई यह न समझ बैठे कि मैं संस्कृत नहीं जानता। मैं संस्कृतका महामहोपाध्याय हूँ, मेरे पीछे उपाधियाँ भी बहुतसी लगी हुई हैं। किन्तु आजकलके हिन्दी-पाठकोंमें बहुत कम ऐसे निकलेंगे जो संस्कृत समझ सकें; इसीसे पाठकों पर दया करके हिन्दीमें ही मैंने सूत्र भी लिखे हैं। लीजिए, अब मैं अपने दर्शनका प्रारंभ करता हूँ—

ॐनमो भगवते पेटदेवाय।

सूत्र—जीवोंके शरीरमें बने हुए बड़े भारी गढ़ेको पेट कहते हैं॥ १॥

भाष्य—'बड़े भारी' अर्थात् नाक, कान आदि छोटे गढ़े पेट नहीं कहे जासकते। कहनेसे विशेष दोष उपस्थित होगा। 'जीवोंके शरीरमें बने हुए' कहनेका मतलब यह है कि पहाड़की

मेरा पुत्र शायद अब बहुत अच्छी अँगरेजीकी योग्यता प्राप्त कर चुका है, नहीं तो ऐसे कठिन शब्दकी ऐसी अच्छी व्याख्या कभी न कर सकता।

—मदारीलाल।

खोह या तालाब आदिको कोइ पेट न समझ ले और उन्हें भरनेकी इच्छा न कर बैठे । ' गढ़े ' के कहनेका अभिप्राय यह है कि यद्यपि जीवोंके शरीरमें बने हुए बड़े गढ़ेको ही पेट कहते हैं, तो भी अवस्था विशेषमें, अर्थात् कभी, कभी अंजली आदिकी भी गिनती पेटमें ही कर ली जासकती है । कहीं पेट भरवाना पड़ता है और कहीं अंजली भरवानी पड़ती है ।

सूत्र—पेटकी त्रिविध पूर्ति ही परम पुरुषार्थ है ॥ २ ॥

भाष्य—सांख्यशास्त्रका भी यही मत है । त्रिविध पूर्ति—अर्थात् आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक पूर्ति ।

' आधिभौतिक '—पूर्ति; लड्डू, पेड़ा, बर्फी, खीर, मोहनभोग आदि तरह तरहकी भौतिक सामग्रियोंसे पेट भरना ।

'आध्यात्मिक'—पूर्ति; बड़े आदमियोंकी बड़ी बातोंसे तृप्त रहना ।

' आधिदैविक '—पूर्ति; दैवकी दयासे पिलही—तिल्ली जलन्धर आदिसे पेटका भर जाना ।

सूत्र—इनमेंसे 'आधिभौतिक'—पूर्ति ही विहित है ॥ ३ ॥

भाष्य—' विहित ' शब्दसे अन्य दो पूर्तियोंका निषेध हुआ या नहीं, इसका निर्णय भविष्यत्के भाष्यकार करेंगे ।

अब यह सिद्ध हुआ कि पेट नामके बड़े विवरमें लड्डू पूरी आदि भौतिक पदार्थोंको भर लेना ही पुरुषार्थ है । अब इस पुरुषार्थके साधन भी निश्चित करने चाहिए ।

सूत्र—पहलेके पण्डितोंने पुरुषार्थ पानेके छह साधन या उपाय बतलाये हैं; यथा—विद्या, बुद्धि, परिश्रम, उपासना, बल, और छल ।

भाष्य—(१) विद्या। विद्या क्या है, यह निश्चय करना बहुत ही कठिन है। कोई कहता है, लिखना–पढ़ना सीख लेना ही विद्या है। कोई कहता है, विद्याके लिए विशेष लिखने पढ़नेकी कोई जरूरत नहीं; पुस्तकें लिख लेना और अखबार लिख लेना आजाना ही विद्वत्ताका प्रमाणपत्र है। कोई इसमें आपत्ति करता है, कहता है, जो लिखना नहीं जानता वह अखबारमें लेख ही कैसे लिखेगा? मेरी समझमें ऐसा तर्क करना ठीक नहीं। मगरका बच्चा अण्डा फोड़कर बाहर निकलते ही पानीमें तैरने लगता है, उसे सीखना नहीं पड़ता। उसी तरह भारतवासियों (विशेषकर हिन्दी भाषाके सम्पादकों, आधुनिक ग्रन्थकर्त्ताओं और कवियों) के लिए विद्या एक स्वभावसिद्ध सहज गुण है उन्हें विद्या प्राप्त करनेके लिए लिखने–पढ़नेकी जरूरत नहीं।

(२) बुद्धि। जिस विचित्र शक्तिके बलसे आमको इमली कर सकते हैं और रुईको लोहा और लोहेको रुई बना सकते हैं, उसे बुद्धि कहते हैं। सूमकी सम्पदाकी तरह इसे आदमी आप ही देख सकता है दूसरा नहीं। पृथ्वी भरकी सब चीजोंकी अपेक्षा यह शक्ति ही जगतमें अधिक देख पड़ती है। मैंने तो कभी किसीको ऐसी शिकायत करते नहीं देखा कि मुझमें बुद्धि कम है।

(३) परिश्रम। ठीक समयपर गर्म गर्म भोजन करना, उसके बाद कोमल बिछौने पर सोना, हवा खाने जाना, तमाखू जला जला कर धुआँधार करना, और अपनी (या पराई) स्त्रीसे प्रेमालाप करना, इत्यादि बड़े बड़े कामोंको पूरा करना ही परिश्रम है।

(४) उपासना। किसी व्यक्तिके सम्बन्धमें यदि कुछ बात की जाती है तो उसमें या तो उसके गुण गाये जाते हैं, और या उसके दोषोंका वर्णन होता है। किसी क्षमताशाली प्रधान व्यक्तिके सम्बन्धमें ऐसा वार्तालाप होनेमें, अगर वह सचमुच दोषपूर्ण है तो उसके दोष -कीर्तनको 'निन्दा' कहते हैं, और यदि उसमें कोई दोष नहीं है तो उसके दोषकीर्तनको 'स्पष्ट कथन' या रसिकता कहते हैं। और गुणोंके सम्बन्धमें यह नियम है कि यदि उसमें कोई गुण न हो तो उसके गुणगानको 'न्यायनिष्ठता' और यदि वह सचमुच गुणी हो तो उसके गुणकीर्तनको 'उपासना' कहते हैं।

(५) बल। बड़ी बड़ी बातें मारना, लाल लाल आँखें निकाल-कर जोर जोरसे चिल्लाना—धमकाना, और मुँहसे अशुद्ध उर्दू अँगरेजी शब्दोंके साथ थूक बरसाना, थप्पड़ लात घूसा मारनेका इशारा करके ओठ चबाना-दाँत पीसना, इनके सिवा साढ़े तिर्पन तरह मटक कर ताल ठोकना,—मगर पटैतके सामने आनेपर औरतके लहँगेमें छिप रहना वगैरह बातें 'बल' कहलाती हैं।

'बल' के छः उपभेद हैं। यथाः—मुखका, हाथोंका, पैरोंका, आँखोंका, खालका, और मनका। गालीगलौज, कोसना और निन्दा करना मुखका बल है। घूसा थप्पड़ वगैरह दूरसे दिख-लाना हाथोंका बल है। भागना वगैरह पाँवोंका बल है। रोना वगै-रहं आँखोंका बल है। प्रमाण चाणक्य पण्डित हैं:—बालानां रोदनं बलं। मारपीट सहना वगैरह खालका बल है। द्वेष, डाह, हिंसाप्रवृत्ति आदि मनका बल है।

(६) छल। नीचे लिखे व्यक्तियोंको संसारमें छली जानना।

एक, दूकानदार। प्रमाण लीजिए—दूकानदार चीज बेचकर उसके दाम माँगता है। दाम देनेवाले जितने हैं सब यही समझते हैं कि हम सौदा खरीदनेमें ठग लिये गये।

दूसरा, वैद्य। प्रमाण लीजिए—रोगीके आरोग्य होने पर अगर वैद्य फीस माँगता है तो रोगी प्रायः यह सिद्धान्त कर लेता है कि मैं आप ही आराम हो गया हूँ, ये हजरत यों ही ठगकर रुपये वसूल किये लिये जाते हैं।

तीसरा, धर्मोपदेशक और धार्मिक। ये सदासे ठग कह कर प्रसिद्ध हैं; इनका और एक नाम है 'भंड'; क्योंकि ये प्रायः असलकी नकल करके लोगोंको ठगा करते हैं। इनके ठग होनेका एक विशेष प्रमाण यह भी है कि ये लोग धन आदिकी इच्छा नहीं रखते।

सूत्र—इन छः प्रकारके साधनोंसे पेट-पूर्ति या पुरुषार्थ असाध्य है॥ ५॥

भाष्य—इस सूत्रसे प्राचीन पण्डितोंके मतका खण्डन किया जाता है। विद्या आदि पूर्वोक्त छह साधनोंसे पेट नहीं भरा जा सकता, नीचे क्रमशः यही दिखलाया जाता है।

(१) **विद्या**से अगर पेट भरता तो हिन्दीके समाचारपत्र भूखों क्यों मरते?

(२) **बुद्धि**से अगर पेट भरता तो गधे बोझा क्यों ढोते?

(३) **परिश्रम**से अगर पेट भरता तो हिन्दुस्तानी लोग कुली ही क्यों बने रहते?

(४) **उपासना**से अगर पेट भरता तो साहब लोग चिदानन्द पर अनुग्रह क्यों न करते ? मैंने तो अपने आफिसके साहबको 'पे-बिल' कुछ बुरा नहीं बना दिया था।

(५) **बल**से अगर पेट भरता तो हम गिरकर मार क्यों खाते ?

(६) **छल**से अगर पेट भरता तो कभी कभी शराबके कारखानोंका दीवाला क्यों निकलता ?

सूत्र—पेट भरना या पुरुषार्थ केवल औरोंका हित करनेसे सिद्ध हो सकता है ॥ ६ ॥

भाष्य—उदाहरण लीजिए—ब्राह्मण पुरोहित महन्त महात्मा वगैरह लागोंके कानोंमें 'मंत्र' फूँककर उनका हित करते हैं। आजकलके हिन्दीसमाचारपत्र आपसमें गालीगलौज करके पाठकोंका हित करते हैं। विचारक लोग न्यायालयमें स्वर्गीयसुखका अनुभव करते हुए अपने विचारसे प्रजाका हितकर रहे हैं। देशी संस्थायें—बेंक आदि दिवाला निकालकर देशका और देशके व्यापारका हित कर रहे हैं। हिन्दीके बुकसेलर—खासकर काशीके—पेंचदार मजेदार चक्करदार उपन्यास लिखकर प्रकाशित कर हिन्दी साहित्यका हित कर रहे हैं। यूरोपकी जातियोंने अनेक जंगली जातियोंका हित किया है। रूस और मंगोलिया ईरानका; बालकन राष्ट्र और इटली टर्कीका; और इंग्लिशमैन आदि ऐंग्लोइंडियन पत्र भारतका हित कर रहे हैं। इन सबका पेट अच्छी तरह भरता है, अर्थात् उन्हें पुरुषार्थ—लाभ होता है।

सूत्र—अतएव सब लोग देशका हित करो ॥ ७ ॥

भाष्य—इस अन्तिम सूत्रके द्वारा हितवाददर्शन और पेट-दर्शनकी एकता सिद्ध की गई। अब बस, चिदानन्दशर्माके सूत्र-ग्रन्थकी समाप्ति भी यहीं समझ लो। मुझे आशा है कि भारतवासी लोग इसे सप्तम दर्शन—नहीं नहीं, अष्टम दर्शन—क्योंकि भारत भरकी एकमात्र महती धर्मसंस्था श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलके व्यवस्थापक मुनीश्वर ज्ञानानन्द सरस्वती भक्तिदर्शन नामका एक सप्तम 'दर्शन' प्रकाशित कर चुके हैं,—समझकर इसका आदर करेंगे।

पतंग।

रसिकबाबूके बैठकखानेमें एक बैठकका ग्लोबदार बड़ा लेंप जल रहा है—पास ही मैं मुसाहबी ढँगसे बैठा हुआ हूँ। रसिकबाबू बैठे हुए हिन्दुस्तानियोंकी आपसकी फूटके बारेमें बातचीत कर रहे हैं। मैं भंगका गोला चढ़ाये झूम रहा हूँ। हिन्दुस्तानियोंकी फूटसे चिढ़ कर आज मैं भंगकी डबल मात्रा चढ़ा गया हूँ। विधाताने मेरे कपालमें यही लिख रक्खा था ! इस समग्र ब्रह्माण्डकी अनादि क्रिया-परम्पराके नियमोंमें विधाताने यह भी लिख दिया था कि बीसवीं शताब्दीमें श्रीचिदानन्द चतुर्वेदी पृथ्वीपर अवतार लेकर आज रातको रसिकबाबूके बैठकखानेमें बैठकर आवश्यकतासे अधिक भंग छान लेंगे। तब मेरी क्या मजाल कि मैं उसे अन्यथा कर सकूँ।

नशेमें झूमते झूमते मैंने देखा, एक पतंग आकर लेंपके चारों ओर फिर कर 'भनभन' करने लगा। नशेकी झोंकमें मैंने सोचा, क्या मैं पतंगकी भाषा नहीं समझ सकता ? कुछ देरतक कान लगा

कर सुनता रहा, पर कुछ न समझ सका। मन-ही-मन मैंने पतंगसे कहा—"तू यह क्या भनभन भनभन कर रहा है, मेरी समझमें कुछ नहीं आता" एकाएक भंगभवानीकी कृपासे मुझे दिव्य कान मिल गये—मैंने सुना, पतंग कहता है—"मैं इस प्रकाशके साथ बातचीत कर रहा हूँ; तुम चुप रहो।" तब मैं चुप होकर पतंगकी बातचीत सुनने लगा। पतंग कह रहा था—

देखो प्रकाशमहाशय, पहले तुम अच्छे थे, पीतलकी दीवट पर मिट्टीके दीपकमें तुम शोभा पाते थे, और हम बिना किसी रुकावटके जल मरते थे। अब तुम भी अँगरेजी फेशनके भक्त होकर शीशेके घेरेमें घुस कर बैठे हो—हम चारों तरफ घूमते फिरते हैं—भीतर तुम्हारे पासतक जानेकी राह नहीं पाते—जल कर मरने नहीं पाते।

देखो, इस तरह जल मरनेका हमको अधिकार है, राइट है, हक है। हमारी पतंग जाति सदासे प्रकाशमें जलकर मरती आई है—कभी किसी प्रकाशने हमको नहीं रोका। तेलके प्रकाश, मोमबत्तीके प्रकाश, लकड़ीके प्रकाश—किसी भी प्रकाशने हमको नहीं रोका। प्रभो, फिर तुम क्यों काँचके कोटमें बैठकर हमें जलमरने नहीं देते ? हम गरीब पतंग हैं; हम पर यह सहमरण-निषेधका आईन क्यों जारी करते हो ? हम क्या हिन्दुओंकी स्त्रियाँ हैं कि जलकर मर न सकेंगे ?

देखो हिन्दुओंकी स्त्रियोंमें और हममें बड़ा अन्तर है। हिन्दुओंकी स्त्रियाँ आशा-भरोसा रहते कभी जलकर मरना नहीं चाहतीं—पहले विधवा होती हैं, पीछे सती। हमारी ही जाति ऐसी है जो

सदा आत्मत्याग करनेके लिए तैयार रहती है। हमारे साथ स्त्रीजातिकी तुलना कैसी ?

यह सच है कि हमारे ही समान स्त्रियाँ भी रूपकी आग जलते देखकर उसमें कूद पड़ती हैं। फल भी एक ही होता है—हम भी जल मरते हैं, और वे भी जल मरती हैं। पर देखो, उनको उस जल मरनेमें सुख है, मगर हमको क्या सुख है ? हम केवल जलनेके लिए जलते हैं, मरनेके लिए मरते हैं। क्या स्त्रियाँ भी ऐसा कर सकती हैं ? फिर हमारे साथ उनकी तुलना कैसी ?

सुनो, अगर ज्वालापरिपूर्ण रूपकी आगमें इस शरीरकी आहुति न दी, तो फिर यह शरीर किस लिए है ? अन्य जीव क्या सोचते हैं, सो तो हम कह नहीं सकते; किन्तु हम पतंग जातिके जीव हैं, हमें बहुत कुछ सोचने पर भी नहीं जान पड़ता कि यह शरीर किस लिए है !—इसे लेकर हम क्या करेंगे ? हम नित्य फूलोंका 'मधु' पीते हैं, नित्य जगत्को प्रफुल्लित करनेवाली किरणोंमें विचरते हैं, परन्तु इसमें क्या सुख है ? फूलोंमें वही एक ही गन्ध है। मधुमें वही एक ही मधुरता है। सूर्यमें वही एक ही प्रकारका तेज है। ऐसे असार, पुराने, विचित्रता-शून्य जगत्में रहना किसे अच्छा लगेगा ? इस घेरेके बाहर आओ, जलती हुई रूपकी शिखा पर हम अपने शरीरको निछावर कर दें।

देखो, मैं तुमसे बहुत ही साधारण भिक्षा चाहता हूँ—अपने प्राण तुमको अर्पण कर जाऊँगा, क्या न लोगे ? देनेके सिवा तुमसे कुछ न लूँगा। फिर इसमें तुम्हारी क्या हानि है ? तुमने अ-

पने रूपमें जलानेके लिए जन्म लिया है, और मैं पतंग जलनेके लिए पैदा हुआ हूँ; आओ, जिसका जो काम है उसे करते चलें। तुम हँसते रहो, मैं जलूँ ।

तुम संसारभरको जला डालनेकी शक्ति रखते हो । जगत्में ऐसी कोई चीज नहीं है जो तुमको रोक सके । फिर तुम काचके कोटमें क्यों छिपे हुए हो ? सारे जगत्की गतिका कारण होकर भी तुम क्यों इस कैदमें पड़े हुए हो ? किस मूर्खने यह काचका कोट बनाया है और किस पाजीने तुम्हें इसके भीतर बंद कर रक्खा है ? प्रभो, तुम तो विश्वव्यापी हो, काचका कोट तोड़कर क्या मुझे दर्शन नहीं दे सकते ?

तुम क्या हो—यह मैं नहीं जानता । यह न जानने पर भी केवल इतना जानता हूँ कि तुम मेरी वासनाकी वस्तु हो—जागतेमें ध्यानकी सामग्री, सोतेमें सुखका स्वप्न, जीवनकी आशा और मरनेका आश्रय हो । तुमको कभी जान न सकूँगा—जानना चाहता भी नहीं । जिस दिन जान लूँगा, उसी दिन मेरा सुख भी चला जायगा । जो चीज चाहकी होती है उसका स्वरूप जान लेने पर फिर वह सुखकी सामग्री या चाहकी चीज नहीं रहती ।

तुमको क्या न पा सकूँगा ? कितने दिन तुम इस काचके कोटमें रहोगे ? क्या मैं इस काचको तोड़ न सकूँगा ? अच्छा रहो, मैं छोड़नेवाला जीव नहीं—फिर आता हूँ ।" भनभन करके पतंग उड़ गया ।

* * * *

इतनेमें रसिकबाबूने पुकारा—"चौबेजी !" मैं चौंक पड़ा। आँखें खोल कर देखा, जान पड़ा—रसिकबाबू न पुकारते तो मैं तकिया लेकर तखतके नीचे ही होता। रसिकबाबूकी तरफ कई बार आँखें फाड़ फाड़ कर देखा, मगर उनको पहचान न सका। ऐसा ज्ञान पड़ा कि एक बड़ा भारी पतंग तकियेके सहारे बैठा हुआ हुक्का पी रहा है। वे मुझसे बातें करने लगे, मुझे जान पड़ा, पतंग भन-भन भनभन कर रहा है। तभीसे मुझे जान पड़ने लगा कि जितने मनुष्य हैं, सब पतंग हैं। सभीके जल मरनेके लिए एक-न-एक अग्नि है। सभी उस अग्निमें जल मरना चाहते हैं। सभी समझते हैं कि उस आगमें जल मरनेका उनको अधिकार है। उनमेंसे कोई जल मरता है, और कोई काचमें टकराकर फिर आता है। ज्ञानकी अग्नि, धनकी अग्नि, मानकी अग्नि, रूपकी अग्नि, धर्मकी अग्नि,कहाँ तक गिनावें, संसार अग्निमय है। इस अग्निमय संसारमें काचका घेरा भी है; जिस प्रकाशको देखकर मोहित होते हैं—मोहित होकर जिसमें कूद पड़ना चाहते हैं—कहाँ, उसे तो नहीं पाते—लौट कर भनभन करते चले जाते हैं, और फिर फिर कर उसीके आसपास चक्कर लगाते हैं। अगर घेरा न होता तो संसार अबतक कबका जल कर भस्म हो गया होता। यदि सभी लोग धर्मके ज्ञाता होकर धर्मकी अग्निको अज्ञानके आवरणसे अलग पाते तो इस संसारका कारोबार कितने दिन चलता ? बहुतसे मनुष्य ज्ञानाग्नि पर चढ़े हुए काचके आवरणसे टकराकर बच जाते हैं। परन्तु 'सात्रेटिस' और 'गेलीलियो' उसमें जल मरे। रूपकी, धनकी और मानकी अग्निमें

तो हम नित्य ही हजारों पतंगोंको जलते मरते देखते हैं। इस अग्निदाहका जिसमें वर्णन होता है उसको काव्य कहते हैं। महाभारतके लेखकने मानकी अग्नि उत्पन्न कर उसमे दुर्योधन—पतंगको जला दिया;—जगत्में एक अद्वितीय काव्य-ग्रन्थकी रचना हुई। ज्ञानाग्निमें जलनेके गीत × 'पैरेडाइज लास्ट' नामके ग्रन्थमें गाये गये हैं। धर्माग्निका अद्वितीय कवि 'सेंट पाल' गिना जाता है। भोगकी अग्निके पतंग 'एण्टोनी और क्लिओपेट्रा' थे। रूपाग्निके पतंग 'रोमियो और जूलियट' थे। ईर्षाकी अग्नि 'ओथेलो' में और इन्द्रियसुखकी अग्नि 'गीतगोविन्द' और 'विद्यासुन्दर' में जल रही है। स्नेहकी आगमें सीता-पतंगको जलानेके लिए रामायणकी रचना हुई है।

आग क्या पदार्थ है—सो हम नहीं जानते। रूप, तेज, ताप, क्रिया, गति आदि शब्दोंका कुछ अर्थ ही नहीं है। यहाँ पर दर्शनशास्त्र हार मानते हैं, विज्ञान हार मानता है, धर्मपुस्तकें हार मानती हैं, काव्यके ग्रंथ हार मानते हैं। ईश्वर क्या है, धर्म क्या है, ज्ञान क्या है, स्नेह क्या है। क्या है, सो हम कुछ भी नहीं जानते। तो भी उन्हीं अलौकिक अज्ञात पदार्थोंको घेर घेर कर चक्कर मारा करते हैं। हम पतंग नहीं हैं तो क्या हैं?

देखो भाई पतंग-दल, इस तरह चक्कर लगानेमें—भटकनेमें कोई लाभ नहीं। हो सके; तो आगमें कूद कर जल मरो। न हो सके, तो चलो, भनभन करके चल दें।

× इंग्लेंडके कवि मिल्टनका एक ग्रंथ।

मेरा मन ।

मेरा मन कहाँ गया ? उसे किसने लिया ? कहाँ, जहाँ मेरा मन था वहाँ तो नहीं है । जहाँ मैंने अपने मनको रख छोड़ा था वहाँ तो उसका कुछ पता नहीं है । किसने उसे चुराया ? उसकी खोजमें पृथ्वी आकाश पाताल एक कर डाला, मगर मेरा मन या मेरे मनका चोर कहीं नहीं मिला । फिर किसने मेरा मन चुरा लिया ?

मेरे एक मित्र बोले—देखो, रसोई-घरमें जाकर देखो । संभव है कि वहाँ तुम्हारा मन पड़ा हो ।

यह मैं मानता हूँ कि रसोई-घरमें मेरा मन पड़ा रहा करता था । जहाँ पुलाव जर्दा कबाब कोफ्ताकी सुगन्ध उड़ती थी—जहाँ डेकची-वाहिनी 'अन्नपूर्णा' की धीमी धीमी फुदफुद बुदबुद ध्वनि सुन पड़ती थी, वहीं मेरा मन पड़ा रहता था । जहाँ आलू देव कढ़ाहीकी गंगामें सतैल स्नान करके मिट्टी काँसे काच या चाँदीके सिंहासनमें विराजमान होते हैं वहीं मेरा मन प्रणत होकर पड़ा रहता है—भक्ति-रसमें सराबोर होकर उस तीर्थस्थानको छोड़ना नहीं चाहता । जहाँ बकरीका बच्चा, 'दूसरे-दधीचि'की तरह परोपकारके लिए अपनी हड्डियाँ अर्पण कर देता है—और उन मांस-मिली हड्डियोंसे कोर्मा-रूपी वज्र बन कर भूख-रूपी वृत्रासुरका वध करनेके लिए तैयार रहता है वहीं मेरा मन इन्द्रपद पानेके लिए उपस्थित रहता है। जहाँ पाचकरूपी विष्णु पूरी-कचौरीरूपी सुदर्शन चक्र छोड़ता है वहीं मेरा मन परम वैष्णव होकर खड़ा रहता है । अथवा जिस आकाशमें पूरी-रूपी चन्द्रमाका उदय होता है वहाँ मेरा मन राहु बनकर ' ग्रहण ' के लिए ताकमें लगा रहता है ।

और लोग चाहे जिसे (रुपया आदिको) कहें, मगर मैं तो पूरीको ही 'अखण्ड--मण्डलाकार' कहता हूँ। जहाँ रसगुल्लारूपी शालग्राम विराजते हैं वहीं मेरा मन उनका उपासक हो रहता है। रसिक बाबूके घरकी मिसरानी देखनेमें तो सूपनखाकी सगी बहिन थी और उसकी अवस्था भी कमसे कम साठ वर्षकी होगी, मगर वह रसोई अच्छी बनाती थी और परोसती भी जी खोलकर थी; इसी कारण एक समय मेरा मन उसको चाहने लगा था। इस शुभकार्यमें बाधा केवल यही हुई कि मिसरानी पहले ही कूच कर गई—इसीसे ऐसा नहीं हो सका।

मित्रके कहनेसे मैंने रसोईमें अपने मनकी खोज की, मगर वहाँ पता नहीं चला। पुलाव कोफ्ता वगैरह अधिष्ठाता देवतोंसे पूछने पर मालूम हुआ कि उनमेंसे किसीने मेरा मन नहीं चुराया।

मित्रने फिर कहा—"अच्छा, अब जरा श्यामा ग्वालिनके यहाँ जाकर तो खोज करो, शायद वही तुम्हारा मन ले गई हो।" श्यामाके साथ मेरा कुछ सम्बन्ध अवश्य है; लेकिन वह सम्बन्ध शृंगाररसका नहीं, गो-रसका है। श्यामा, देखनेमें गदबदी गोल गोल अवस्था पचासके लगभग, दाँतोंमें मिस्सीकी धड़ी, माँगमें सेंदुर भरा, मुखमें हँसी भरी, नाकमें छोटीसी नथ, सिरपर मटकी दूध-भरी लिए, रस-मयी हँसी बरसाती राहमें चली जाती थी, और मैं पीछे पीछे उस हँसीका मजा बटोर बटोर कर अपनी झोली भरता जाता था—यह देखकर कुछ दुष्ट दुनियाके लोग मेरी निन्दा करने लगे। पुजारी महाराजके मारे बागमें फूल नहीं खिलने पाता, और चवाइयोंके मारे श्यामाके आगे मेरा मुखकमल नहीं खुलने पाता। नहीं तो गोरस

और काव्यरसमें परस्पर खूब देन लेन चलता। इससे मुझे मेरे लिए चाहे दुःख हो, या न हो, लेकिन श्यामाके लिए मुझे अवश्य बड़ा दुःख है। क्योंकि मेरी समझमें श्यामा सती साध्वी पतिव्रता है। यह बात भी मैं चार आदमियोंके आगे कहने नहीं पाता। एक बार मैंने यह बात कही तो महल्लेके एक दुष्ट लड़केने इसका भी उलटा ही अर्थ किया। उसने कहा—श्यामा 'है,' इसलिए वह 'सत्' या 'सती' है। वह साधू ग्वालेकी स्त्री है, इससे उसे 'साध्वी' कह सकते हैं। और वह विधवा होने पर भी पतिसे खाली नहीं, इसीसे घोर 'पतिव्रता' है। कहनेकी जरूरत नहीं कि मैंने शिक्षा देनेके लिए ऐसा बुरा अर्थ करनेवाले लड़केके दो चार लप्पड़ झाड़ दिये थे; किन्तु इससे भी मेरा कलंक दूर नहीं हुआ।

जब लिखने बैठा हूँ तब साफ-ही-साफ लिखूँगा। मेरे मनमें श्यामाका अनुराग कुछ न कुछ अवश्य है। इसके कई कारण हैं—एक तो यह कि वह जो दूध देती है वह सस्ता होता है, और उसमें पानीका एक बूँद भी नहीं मिला होता। दूसरे यह कि वह कभी कभी दूध, मट्ठा, मक्खन वगैरह मुझे मुफ्त ही दे जाती है। तीसरे एक दिन उसने मुझसे कहा था कि "चौबेजी, तुम्हारे पास वह कागजोंकी पोटली कैसी है?" मैंने पूछा—"क्या तुम सुनोगी?" इसके बाद मैंने उसे कई लेख पढ़कर सुनाये। उसने बैठकर मन लगाकर उन्हें सुना। भला, इस व्यवहारसे कौन लेखक बे-दामका गुलाम न बन जायगा। श्यामाकी तारीफ कहाँतक करूँ, उसने मेरे कहनेसे—अनुराध करनेसे भंग पीना भी शुरू कर दिया है।

इन्हीं सब कारणोंसे मेरा मन कभी कभी श्यामाके घरके चारों ओर चक्कर लगाया करता था—यह बात मैं स्वीकार करता हूँ। किन्तु, केवल उसके आसपास ही नहीं, उसके यहाँ जिस दालानमें मंगला गऊ बँधती है वहाँ भी मेरा मन बराबर ताकझाँक लगाये रहता है। मैं जैसे श्यामाको चाहता हूँ वैसे ही मंगलाको भी। एक दूध, मट्ठा और मक्खन पैदा करती है, और दूसरी देती है। गंगा विष्णुके चरणोंसे पैदा हुई हैं, लेकिन उनको यहाँतक लाये हैं राजा भगीरथ। मंगलाको मैं विष्णुपद और श्यामाको राजा भगीरथ समझता हूँ। मैं दोनोंको समानभावसे चाहता हूँ। श्यामा और उसकी गऊ, दोनों ही सुन्दरी, दोनों ही मोटी ताजी, रसमयी, दूध देनेवाली, और घड़े घड़े भरके थनोंवाली हैं। उनमेंसे एक गोरसकी और दूसरी हास्यरसकी जननी है। और मैं, मैं तो दोनोंहीके निकट बिना दामके बिक चुका हूँ।

किन्तु आजकल खोज करनेसे जान पड़ा कि मेरा मन श्यामाके छपरखटमें या गोशालामें नहीं है। फिर मेरा मन कहाँ गया?

रोते रोते घरके बाहर निकला। देखा एक युवती जलकी कलसीको कमरपर रक्खे लिये जा रही है। उसके मुखमण्डलपर दृष्टि पड़ी तो उसकी गहरे काले रंगकी और हवाकी हिलोरोंसे हिलती हुई अलकें, काली काली कमान सी भौंहें, और काली काली आँखोंकी पुतलीयाँ देखकर जान पड़ा जैसे कमलके वनमें चंचल भौंरे घूम-घूम कर उड़ रहे हैं—बैठते नहीं, उड़े उड़े फिरते हैं! चलनेमें उसके अंगोंका हिलना देखकर जान पड़ता था, जैसे लावण्यकी नदीमें छोटी छोटी लहरें

उठ रही हैं। पग पग पर, चलते समय, जान पड़ता था, जैसे वह हृदयकी हड्डियाँ तोड़ती चली जा रही है। उसे देखकर मुझे जान पड़ा कि निस्सन्देह इसीने मेरा मन चुराया है। मैं उसके साथ हो लिया। उसने घूमकर कुछ क्रोधका भाव दिखाकर कहा "यह क्या जी! तुम मेरे साथ क्यों आ रहे हो!"

मैंने कहा--तुमने मेरा मन चुराया है?

युवतीने मुझको गाली देकर तीखे स्वरमें कहा— "मैंने चुराया तो नहीं है। अलबत्ता तुम्हारी बहिनने दाम लगानेके लिए मुझको दिया था—पर मैंने उसका भाव बताकर तुम्हारी बहिनको ही फेर दिया है। अपनी बहिनके पास जाकर तलाश करो।"

उस घड़ीसे मैं सीख गया। फिर मनकी खोजमें वैसी रसिकता करनेका साहस मुझे नहीं हुआ। मगर मन-ही-मन मैंने समझ लिया कि मेरा मन इस संसारमें कहीं किसी चीजमें नहीं है। दिल्लगी नहीं, सच कहता हूँ, किसी चीजमें मेरा मन नहीं है। शरीरके सुख और आराममें मन नहीं है। जो हँसी दिल्लगी मुझे प्यारी थी उसमें भी अब मेरा मन नहीं है। मेरी कुछ फटी पुरानी पोथियाँ थीं, उनमें मेरा मन पहले रहता था, मगर अब वहाँ भी नहीं है। धनोपार्जनमें तो मेरा मन कभी था ही नहीं, और अब भी नहीं है। कहीं किसी चीजमें मेरा मन नहीं है, फिर बतलाओ, मेरा मन कहाँ गया!

समझा, लघुचेता (छोटे दिलके) आदमियोंके लिए मनका बन्धन अवश्य चाहिए, नहीं तो उनका मन उड़ जाता है। संसा-

रमें हम क्या करनेके लिए आते हैं—सो तो मैं ठीक ठीक बता नहीं सकता, किन्तु इतना अवश्य जान पड़ता है कि मनको बन्धनमें डालनेहीके लिए आते हैं । मैं हमेशा अपना ही रहा—पराया नहीं हुआ; यही कारण है कि इस पृथ्वी पर मुझे सुख नहीं है। जो लोग स्वभावसे ही निपट आत्मप्रिय होते हैं वे भी ब्याह करके—गृहस्थ होकर स्त्री-पुत्रोंको आत्मसमर्पण कर देते हैं, इसी कारण वे सुखी हैं। नहीं तो वे किसी तरह सुखी न हो सकते । मैंने बहुत खोज करके देखा है कि पराये लिए आत्मविसर्जनके सिवा पृथ्वी पर स्थायी सुख पानेका और उपाय नहीं है। धन, यश, इन्द्रियसुख आदि सुख हैं, लेकिन वे स्थायी (ठहरनेवाले) नहीं हैं । ये सब पहले-पहल कुछ सुख देते हैं। दूसरी बार उतना सुख नहीं होता, तीसरी बार और भी कम सुख होता है । धीरे धीरे अभ्यास होजाने पर उनमें कुछ भी सुख नहीं रहता । सुख तो, रहता ही नहीं, उलटे असुखके दो कारण पैदा हो जाते हैं। एक तो जिस चीजका अभ्यास पड़ जाता है उसके होनेसे सुख नहीं होता, लेकिन न होनेसे भारी कष्ट जान पड़ता है—दूसरे, पूर्ण न होनेवाली लालसाके बढ़ते रहनेसे दुःख और यन्त्रणाकी सीमा नहीं रहती ।अतएव पृथ्वी पर जो चीजें कामनाकी वस्तु कहकर चिरकालसे परिचित हैं वे सभी तृप्त न कर सकनेवाली, और इसीसे दुःखकी जड़ हैं । जहाँ देखोगे वहाँ यशके साथ निन्दा, इन्द्रियसुखके साथ रोग, धनके साथ हानि और चिन्ता देखोगे । सुन्दर शरीर बुड्ढा और रोगी हो जाता है, सुनाममें भी मिथ्या कलंक लगाया जाता है, अपने धनको कहीं

कहीं स्त्रीका यार भोग करता है, मान और प्रतिष्ठा मेघमालाकी तरह शरदऋतु (बुढ़ापे) में नहीं रहती। विद्यासे भी तृप्ति नहीं होती, वह केवल अन्धकारसे घोर अन्धकारमें ले जाती है। उससे इस संसारकी तत्त्व-जिज्ञासा कभी मिट नहीं सकती। हाँ, यह बात अवश्य है कि विद्याका जो उद्देश्य (धन, मान, यश आदिकी प्राप्ति) है वह अवश्य उसके द्वारा सिद्ध हो जाता है। किन्तु उससे सच्चे सुखकी प्राप्ति नहीं होती। क्या आपने कभी किसीको कहते सुना है कि "मैं धनोपार्जन करके, अथवा यशस्वी होकर सुखी हुआ हूँ?" इन कई लाइनोंको जो कोई पढ़े, वही स्मरण करके देखे कि उसने कभी किसीके मुखसे ऐसा सुना है। मैं सौगंद खाकर कह सकता हूँ कि किसीने कभी ऐसी बात नहीं सुनी होगी। इससे बढ़कर धन और मानके कार्यकरी न होनेका प्रमाण और क्या हो सकता है? आश्चर्यकी बात तो यही है कि ऐसे अकाट्य प्रमाणके रहते हुए भी हर एक आदमी उसी धन और मानके लिए प्राण पणसे चेष्टा करता है। इसका कारण और कुछ नहीं, आजकलकी 'सुशिक्षा' है। माके दूधकी घूँटीके साथ ही बच्चेके हृदयमें यह विश्वास पैठ जाता है कि जो कुछ है वह धन और मान है। बालक देखता है कि रातदिन उसके मा-बाप, भाई-बहिन, पास-परोसी, इष्ट-मित्र, नौकर-चाकर; सभी हाय धन, हाय यश, हाय मान, करते फिरते हैं। बस, वह बालक बोल निकलनेके पहले ही उसी रास्ते पर चलना सीख जाता है। न जाने यह मनुष्यसमाज कब नित्य और सच्चे सुखके पानेका उपाय खोजेगा? जितने विद्वान्, बुद्धिमान्, दार्श-

निक और संसारका तत्त्व जाननेकी डींग हाँकनेवाले हैं, सब मिल कर देखें कि औरको सुखी बनानेके सिवा अपने सुखी होनेका और कोई उपाय है या नहीं। मैं कहता हूँ कि नहीं है। मैं मरकर जलकर राख हो जाऊँगा, मेरा नाम तक इस संसारसे उठ जायगा, किन्तु मैं मुक्तकण्ठ होकर कहता हूँ कि एक दिन लोग मेरी इस बातको अवश्य जानेंगे कि मनुष्यके स्थायी सुखका मूल कारण दूसरेको सुखी करनेके सिवा और नहीं है। आज जैसे लोग धन मान आदिके पीछे पागल बने फिरते हैं वैसे ही एक दिन सारी मनुष्यजाति दूसरेको सुखी बनानेके लिए पागल हुइ फिरेगी। मैं मरकर मिट्टीमें मिल जाऊँगा, मगर मेरी यह आशा एक दिन अवश्य सफल होगी! सफल होगी, लेकिन कितने दिनोंमें? हाय, कौन बतलावेगा, कितने दिनोंमें!

बात पुरानी है। ढाई हजार वर्ष पहले शाक्यसिंह इसी बातको कई तरह बतला गये हैं। उनके बाद और भी कई लोकशिक्षक महापुरुषोंने यही सिखलाया है। किन्तु किसी तरह संसारके लोग नहीं सीखते—वे किसी तरह इस धन-जन-मान-लालसाके इन्द्र-जालको अपने आगेसे हटा नहीं सकते। इधर जबसे अँगरेजी शासनका अधिकार हुआ है तबसे इस मामलेमें और भी गड़बड़ी पड़ गई है। अँगरेजी शासन, अँगरेजी सभ्यता और अँगरेजी शिक्षाके साथ साथ 'मेटीरियल प्रास्पेरिटी' (बाह्य सम्पत्ति) पर अनुराग भी दिनोंदिन इस देशमें बढ़ता जाता है। अँगरेज जाति इस बाह्यसम्पत्तिको बेहद चाहती है, अँगरेजोंकी सभ्यताका यह

प्रधान चिह्न है। अँगरेज लोगोंका जबसे यहाँ शुभागमन हुआ है तबसे वे इस देशकी बाह्यसम्पत्ति बढ़ानेमें ही जीजानसे जुटे हुए हैं; हम भी 'यथा राजा तथा प्रजा' होकर उस बाह्यसम्पत्तिके आगे और सब भूल गये या भूल रहे हैं। भारतवर्षकी और देवमूर्तियाँ स्थानभ्रष्ट हो गई हैं; सिन्धुसे लेकर ब्रह्मपुत्र नद तक केवल बाह्य सम्पत्तिकी पूजा हो रही है। देखो. बनिजकी कैसी श्रीवृद्धि या तरक्की हो रही है—देखो रेलगाड़ीका जाल कहाँतक फैला हुआ है— देखते हो, टेलीग्राफ कैसी चीज है!

देखता हूँ, किन्तु चिदानन्दका प्रश्न यह है कि तुम्हारे टेलीग्राफसे और रेलगाड़ीसे मेरे मनका सुख कितना बढ़ेगा? मेरे खोये हुए मनको क्या ये वस्तुएँ खोज ला दे सकती हैं? क्या इनसे किसीके जीकी ज्वाला मिट सकती है? इनसे कृपणकी तृष्णा मिट सकती है? किसी अपमानितके अपमानका बदला चुक सकता है? अगर नहीं, तो तुम अपनी इस रेल और टेलीग्राफको उखाड़ कर समुद्रमें फेंक दो; चिदानन्दकी तो यही राय है।

क्या अँगरेजी, और क्या हिन्दी,—जो मासिकपत्र, समाचारपत्र और व्याख्यान हम देखते या सुनते हैं उसीमें हमको बाह्यसम्पत्तिकी चर्चा या आलोचना मिलती है। बम् भोलानाथ! बाह्यसम्पत्तिकी पूजा करो, रुपयोंकी ढेरी पर ढेरी चढ़ाओ; जो कुछ है वह सोलह आनेका रुपया है! रुपया भक्ति है, रुपया मुक्ति है, रुपया उन्नति है, रुपया सद्गति है! रुपया धर्म है, रुपया कर्म है—रुपया ही धर्मार्थकाममोक्षका मूल है! उस राह पर न जाना, देशका रुपया घटेगा, उस राह

चलो, देशका रुपया बढ़ेगा! जय पशुपतिकी! रुपया बढ़ाओ—रुपया बढ़ाओ! रुपया रेल और टेलीग्राफसे बरसता है, उन्हींके मन्दिरोंमें जाकर सिर झुकाओ! ऐसा करो जिसमें रुपया बढ़े, शून्य आकाशसे रुपये बरसा करें? रुपयोंकी झनझनाहटसे भारत भर उठे! और मन? मन और क्या चीज है? रुपया ही मन है, मन तन्मय है! मन हमारा 'टकसाल' में गढ़ा और बिगाड़ा जाता है। रुपया ही बाह्य-सम्पत्ति है। हर हर बम् बम्! बाह्यसम्पत्तिकी पूजा करो! इस पूजाके पुरोहित शुद्धाचारी अँगरेज ऋषि हैं। आदमास्मिथ-पुराण और मिल-तन्त्रसे इस पूजाके मन्त्र पढ़े जाते हैं। इस पूजाके उत्सवमें अँगरेजी अखबार नगाड़ा और ढोल बजाते हैं, और हिन्दी अखबार झाँझ पीटते हैं। शिक्षा और उत्साहका नैवेद्य लग जानेपर हृदयकी भेट चढ़ाई जाती है। इस पूजाका फल भी सुनोगे? सुनो, इस पूजाका फल है इस लोक और परलोकमें सदाके लिए नरकभोग! तो आओ फिर, सब जने मिलकर बाह्यसम्पत्तिकी पूजा करें। आओ, यशो-गंगाके जलमें धोकर, वञ्चना-बिल्वपत्रमें मीठी बातोंका चन्दन छिड़-ककर इस महादेवकी पूजा करें। बोलो भाई हर हर बम् बम्! हम बाह्यसम्पत्तिकी पूजा करते हैं। बजाओ भाई ढोल तुरही और झाँझ —ढम ढम ढम, झम झम झम! आइए पुरोहितजी! मन्त्र पढ़िए। हमारे इस बहुत पुराने घीको लेकर स्वधाःस्वाहा उच्चारण कर अग्निमें आहुति दीजिए! कहाँ हैं लाला मदारीलालके साहबजादे यूटिलिटे-रियन बहादुर! बकरेकी गर्दन खूँटे पर रक्खी है; एक बार बाबा पञ्चा-नन्द* का नाम लेकर हाथ मारो! हर हर बम् बम्! चिदानन्द

खड़ा हुआ है, बकरेकी 'मूड़ी' देना ! तुम मजेमें पूजा करो ।

पूजा करो, कोई हानि नहीं, परन्तु मुझे कई बातें समझा दो।—तुम्हारी इस बाह्यसम्पत्तिसे कितने अभद्र भद्र हुए हैं? कितने अशिष्ट शिष्ट हुए हैं? कितने अधार्मिक धर्मात्मा हुए हैं? कितने अपवित्र पवित्र हुए हैं? एक भी नहीं । अगर मेरा यह अनुमान सच है, तो मुझे तुम्हारी यह 'सम्पत्ति' रत्तीभर न चाहिए। मैं आज्ञा देता हूँ कि इसे भारतसे उठा दो ।

तुम्हारी बातें मैं समझता हूँ । तुम्हारा विश्वास है कि यह पेट नामका जो बड़ाभारी गढ़ा है इसे नित्य भरना चाहिए; नहीं तो काम नहीं चल सकता । तुम कहते हो कि "सबका यह गढ़ा जिसमें अच्छी तरह भरता रहे उसीकी चेष्टा हम करते हैं।" मैं कहता हूँ कि, यह तो बहुत ही अच्छी बात है, परन्तु इसके लिए इतनी धूम-धाम या तन्मयताकी आवश्यकता नहीं। इस गढ़ेके भरनेमें तुम ऐसे लग गये हो कि तुमको और तरफ आँख उठाकर देखनेका भी अवकाश नहीं। मेरी समझमें गढ़ेका एक कोना चाहे खाली रहे, वह अच्छा; परन्तु और और तरफ भी मन लगाना चाहिए । गढ़ेको भरना और मनकी तृप्ति (सुख) दोनों भिन्न हैं । मानसिक सुख बढ़ानेका क्या कोई उपाय नहीं हो सकता? तुम इतनी कलें बनाते हो; क्या मनुष्य

---

* पञ्चानन नाम ठीक नहीं——पञ्चानन्द ही ठीक है । मदिरा, मांस, गाड़ी-जोड़ी, पोशाक, और वेश्या—इन पाँच आनन्दोंसे पञ्चानन्दका संगठन हुआ है । —मदारीलाल ।

मनुष्यमें परस्पर प्यार बढ़ानेकी कोई कल नहीं बन सकती ? जरा अकल लड़ाकर देखो, नहीं तो सब विकल हो जायगा !

मैं भी चिरकालसे केवल गढ़ा भर रहा हूँ—मैंने कभी पराये लिये कुछ नहीं सोचा । इसीसे सब खो बैठा हूँ—संसारमें मेरे लिये सुख नहीं है—इसीसे इस पृथ्वी पर मेरे रहनेका प्रयोजन भी कुछ नहीं । दूसरेका बोझा अपने सिरपर क्यों लूँ, यही सोचकर मैंने ब्याह नहीं किया । उसका फल यह हुआ कि मेरा मन कहीं नहीं है—लापता है । मतलब यह कि मैं सुखी नहीं हूँ । सुखी कैसे हो सकता हूँ ? जब मैं किसीके काम न आया—किसीकी जिम्मेदारी मैंने नहीं ली, तब सुख पर मेरा अधिकार ही क्या है ?

यह सच है कि सुख पर मेरा अधिकार नहीं है, लेकिन इससे यह न समझ लेना कि तुम लोगोंने ब्याह किया है और उससे तुम सुखी हुए हो । यदि पारिवारिक स्नेहमें तुम्हारी आत्मप्रियता (खुदपसन्दगी) लीन नहीं हुई, यदि विवाहसंस्कारसे तुम्हारा हृदय उदार नहीं बना, यदि तुम अपने परिवार पर प्यार करनेके द्वारा सारी मनुष्यजातिको प्यार करना नहीं सीखे, तो तुम्हारा ब्याह वृथा हुआ—तुमने व्यर्थका बखेड़ा मोल लिया । इंद्रियतृप्ति या पुत्रका मुख देखना ही विवाहका उद्देश्य नहीं है । यदि विवाहबन्धनसे मनुष्यका चरित्र उत्तम न बना तो विवाहकी कोई जरूरत नहीं । इन्द्रियाँ अभ्याससे वश की जा सकती हैं, अभ्याससे ही इन्द्रियाँ एकदम शान्त बनाई जा सकती हैं । मेरी सम्मति है कि मनुष्यजाति अभ्यासके द्वारा इन्द्रियोंको वशमें रखकर चाहे पृथ्वीपरसे उठ जाय, किन्तु जिस विवाहसे प्रीतिकी

शिक्षा न मिले वैसे विवाहकी कोई आवश्यकता नहीं है।

अब चिदानन्द शर्मा हाथ जोड़कर सबसे यह प्रार्थना करता है कि क्या आप लोगोंमेंसे कोई सज्जन उसका एक ब्याह करा दे सकते हैं?

चाँदनीमें।

इस घासफूससे हरे भरे स्थानमें-इस उमंगसे बहती हुई गंगाके किनारे, इस चमकीली चाँदनीमें आज चिट्ठेकी श्रीवृद्धि करूँगा- उसका कलेवर बढ़ाऊँगा। ऐसी ही चाँदनीमें ट्रॉल्स शर्मा ट्रायकी ऊँची दीवार पर चढ़कर क्रिसीडाकी यादमें गर्म साँसें लिया करते थे- ऐसी ही चाँदनीमें सुन्दरी थिसबी इसी तरह ओसके बूँदोंसे भीगी हुई कोमल घासको सुकुमार पैरोंसे रौंध कर पिरामसके मिलनस्थानको अभिसार करती थी-और हमारे कान्हाने भी ऐसी ही शरद ऋतुकी चाँदनीमें रास रचा था। मैं भी आज पञ्चपतिका और द्रौपदीसे भी बढ़कर 'महाभारत' रचानेकी शक्ति रखनेवाली इस लेखनीके साथ रास रचने बैठा हूँ-देखूँ, कन्हैयाकी तरह पहाड़ उठा सकता हूँ, या नहीं!

चन्द्र, तुम हँसते हो? मारे हँसीके आकाशमें लोट लोट फिर रहे हो? अपना सत्ताईस प्यारियों (नक्षत्रों) के साथ आँख मटका कर मुझे हँस रहे हो? राजा दक्षकी समझदारी पर वारी!-एकदम सत्ताईस लड़कियाँ गले मढ़ दीं। इधर चिदानन्द शर्मा केवल एक एक ब्याहके लिए ईश्वरसे त्रिकाल प्रार्थना करते करते बूढ़ा होगया! अच्छा, अब तुम अमल धवल-किरणराशि सुधाकर! और नहीं तो

व.मसे कम 'श्लेषा' और 'मघा'को मुझे दे दो—मैं इन दोनोंको बहुत प्यार करता हूँ। मुझ जैसे निकम्मे लोग इनकी कृपासे कमसे कम दो दिन अपने घर रहनेका आराम पा सकते हैं ! मैं इन दोनों बहनोंको अपने घरमें सदाके लिए रखकर सुखसे समय बिताऊँगा। इनमें और भी अनेक गुण हैं—अपनी अक्षमता (नालायकी) के कारण कोई काम पूरा न होने पर लोक सहज ही इन्हें दोष देकर आप बरी हो सकते हैं। मैं भी रसिक बाबूके घरका सौदा खरीदनेमें अगर ठगा आऊँगा तो बस इन्हीं दोनोंके मत्थे सारा दोष मढ़कर सफाई दे सकूँगा।

चन्द्रदेव ! तुमने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया ? अभी तक तुम गंगाके तरंग-रंग-भरे हृदयपरसे अन्धकार-पट अपने करों*से हटाते ही जा रहे हो ? अब भी ठंडी हलकी हवाके साथ गुपचुप सलाह करके पेड़ोंकी फुनगियोंपर अपनी झलक दिखाओगे ? अब भी घास पर वैसे ही मणि-मुक्ता-मरकत (पन्ना) की वृष्टि करोगे ? घूरेमें मोती और कोई बिथरावे चाहे न बिथरावे, मगर मैं देखता हूँ कि तुम बिथराया करते हो। आज मैं भी बिथराऊँगा।

इस संसारके लोग—ये कन्नौजराज जयचंदके प्र-परा-अप-पौत्र और उनके निर-दुर-वि-अधि दौहित्र मुझे जला जलाकर खाक किये देते हैं। मेरी छातीके ऊपर विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई है। बी. ए. हुए बिना ब्याह नहीं होता। अब संसारका चलना अत्यन्त कठिन जान पड़ता है। उच्च शिक्षाका फल क्या है ?—मसहरी, चाँदीके कलशे,

---

* किरणों और हाथों।

सोनेकी घड़ी—चेन और बटन तथा सिरसे पैर तक सोनेचाँदीके गहनोंसे लदी हुई, रेशमी कपड़ोंसे मढ़ी हुई एक वंशयष्टिका× । हरि हरि बोलो भाई ! डूबतेमें तिनकेका सहारा लेनेवाले पाण्डित्याभिमानी बी. ए. उपाधिधारी उच्चशिक्षित बाबूदलको कलशी-वस्त्र-वंश-खटिया -समेत सचेत अवस्थामें गंगालाभ होगया ! ! ! *पहले उपाधि मिली थी, अब समाधि मिली । वे विलायती ब्रह्ममें लीन होगये । भारतके युवक संसारी जीव हुए । उनकी उच्चशिक्षाने उन्हें उन्नतिके पहाड़-की चोटी पर खड़ा कर दिया। उन्होंने हजार तोलेके चाँदीके बर्तन, और सौ तोले सोनेके गहने और संसारकुटीरका आधारदण्ड एक वंशयंष्टिका (स्त्री) पाई है, और—और उसके साथ उनको हेमकूट पर्वतके पास किष्किन्धापुरीकी सरकारी बकालत भी—जिसपर उनका बहुत दिनसे दाँत था—मिल गई। हरि हरि बोलो भाई ! उन्हें इतने दिनके बाद समाधि मिली ! ! ! उन्होंने उच्चशिक्षा पानेके लिए बड़े यत्नसे कामस्काट्का+ देशकी नदियोंके नाम कण्ठस्थ किये हैं । इसी उच्चशिक्षाके लिए उन्होंने आधी आधी रातको तेल जलाकर लेम्पके आगे एकाग्रभावसे सहारा मरुभूमिके धूलिकणोंका हिसाब लगा डाला है । इसी उच्चशिक्षाके लिए सार्लिमेनके पहलेकी ५२ पीढी और पीछेकी ५३ $\frac{1}{2}$ पीढीके नाम रट डाले हैं । इसी उच्च शिक्षाके बलसे

× वंश चलानेका सहारा अर्थात् स्त्री ।

* इस समय चिदानन्दने जरूर बेहद भंग पी ली थी; नहीं तो वह इस तरहकी बात न लिखता —**मदारीलाल** ।

+ रूसके उत्तर पूर्वका प्रायद्वीप ।

उन्होंने सीखा है कि प्रकाश्य सभाओंमें अनर्गल वक्तृता दे लेना हीं परम पुरुषार्थ है, किसी–न–किसी तरह अँगरेजोंकी निन्दा कर लेना ही राजनीतिकी जानकारी है, और वंशदण्डिका (स्त्री) की स्थापना करके उम्मेदवारों (बालबच्चोंका)का दल बढ़ाकर जगत्को जंगल बना देना ही इस कलियुगी जीवनकी सफलता है।

'मगर मैं, इसतरहकी वंशदण्डिका नहीं चाहता। मैं बिल (वसीयत) कर जाऊँगा कि मेरी सात पीढ़ीतक किसीका ब्याह न हो तो भी अच्छा, लेकिन ऐसी वंशदण्डिकाके सहारे स्वर्ग पानेकी कामना करना किसी तरह उचित नहीं। यदि संसारको चलानेके लिए ब्याह किया जाता है तो मैं मछली वग़ैरह जानवरोंके साथ ब्याह करूँगा। अगर रुपयेके लिए ब्याह किया जाता है तो मैं टकसालके बड़े अफसरसे ब्याह करूँगा। और यदि सौन्दर्यके लिए ब्याह किया जाता है तो घूँघटसे घिरे हुए चन्द्र-वदनको दूरहीसे प्रणाम कर इस चन्द्रसे ब्याह करूँगा।

भागीरथी! अगर तुम शान्तनु राजाके विशाल वक्षःस्थलमें, या उससे ऊँचे हिमालयके भवनमें, अथवा और भी ऊँचे महादेवके जटाजूटमें रहतीं तो आज कौन तुम्हारी उपासना करता? तुम नीचगामिनी होकर, मनुष्यलोकमें उतर कर सहस्र धारासे सागरसे मिलने गईं--इसीसे सगरराजाके साठ हज़ार पुत्रोंका उद्धार कर सकीं। वायुदेव! अगर तुम अञ्जनाके अञ्चलसे ही चिरकाल तक क्रीड़ा करते रहते, या मलयाचल पर अपने प्रमोदमन्दिरके बीच चन्दनकी डालें झुकाकर अथवा इलायचीकी लताओंको हिलाकर--छेड़ कर फिरते रहते,

तो फिर कौन "त्वमेव जगज्जीवनं पालनं" कह कर तुम्हारी स्तुति करता ? इन वसन्त-विलासी पक्षियोंका कलरव यदि नन्दनवनमें ही सुन पड़ता तो चिदानन्दशर्मा आज यहाँ इतनी रातको इनके नाम पर वृथा स्याही कलमका नाश क्यों करता ? चन्द्र ! यदि तुम क्षीरसागरके तले—अमृतके भंडारेमें—मूँगेके पलँग पर—मोतीकी मसहरी डालकर सोते रहते तो फिर कौन तुम्हारे साथ महिला-मुख-मण्डलकी तुलना करता ? अथवा तुम इन अपनी सत्ताईस सुन्दरियोंकी मण्डली लेकर "सारं श्वशुरमान्दिरं"के सिद्धान्तको सच्चा समझ दक्षके भवनमें ही वास करते रहते तो आज चिदानन्द शर्मा इस तरह तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषासे इस स्मशानके निकट संसारसे तटस्थ होकर कैसे बैठता ?

शशि,—अगर तुमने व्याकरण पढ़ा हो तो मुझे माफ करना, मुझे शशिन् कहनेका अभ्यास नहीं है—मैं अभीतक तुम्हारे गुणों पर दृष्टि डाल रहा था। सचमुच तुममें अनेक गुण हैं। शशि, तुम अनाथाकी झोपड़ीके द्वार पर पहरेदारकी तरह चौकसी किया करते हो, जरा पलक नहीं झपकने पाती। इसी तरह छोटा बच्चा जब नाचता नाचता तुमको पकड़ने चलता है, तब तुम उसके साथ नाचते नाचते खेलते हो; छोटी छोटी लड़कियाँ जब स्वच्छ सरोवरके भीतर तुमको कभी देख पाती और कभी नहीं देख पाती हैं तब तुम्हें देखनेकी लालसासे इधर उधर सरोवरके किनारे दौड़ती हैं और तुम फिर तनिकसी झकैया देकर उनके साथ लुकीलुकैया खेलते रहते हो; नई बहू जब महलके ऊपर अकेले आड़में बैठकर लंबी साँसें लेती है तब तुम वृक्षोंके झुर्मुटसे धीरे धीरे मुँह उठाकर उसके हृदयमें अमृतकी वर्षा करते हुए शान्ति

लाते हो; जब नदी आशातरंगपूर्ण हृदय लेकर धीरे धीरे प्रवाहकी मन्द गतिसे सागरके पास जाती है तब तुम्हीं उसे सुवर्ण-भूषण पहनाकर आशीर्वाद देते हुए राह दिखलाते हो; जब गुलाब वसन्तरागमें मस्त होकर खिलता और हिलता डुलता है तब तुम्हीं उसके कानमें चमेली-को चूमनेकी सलाह देते हो। और वही तुम, जब बुरे विचारसे कोई मनुष्य किसी कुलकामिनीका धर्म लेनेको उद्यत होता है और तुम अपने सुकुमार मुखमण्डलमें कोपकी डोरीसे भौंहकी कमान तानते हो तब वह तुम्हारी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकता। तुम्हीं खूनीकी तरवारमें ऐसी बिजली चमका देते हो कि उसे उसका पाप रुधिरबिन्दुओंके रूपसे रौरव नरक दिखला देता है।

तुम खिलाड़ी बच्चेके लिए चलती हुई सोनेकी थाली, तरुण पुरुषोंके लिए आशा-दीप, युवकयुवतियोंके लिए रात बिताने और भोग करनेकी प्रधानसामग्री, तथा बूढ़ोंके लिए स्मृति-दर्पण हो। तुम अनाथाके पहरेदार, पथिकके पथप्रदर्शक स्थिर दीपक, गृहस्थके रात्रि-सूर्य, पापीके पापके साक्षी, और पुण्यात्माके यशकी पताका हो। तुम आकाशकी उज्ज्वल मणि, जगत्‌की शोभा, और इस मरघटके जीव श्रीचिदानन्दके हृदयके सर्वस्व हो। तुम अच्छेके लिए अच्छे, और बुरेके लिए बुरे हो, रसमें रस हो, नीरस समयमें विष हो। तुम मुझ चिदानन्दकी सहधर्मिणी (स्त्री) बनने योग्य हो। शशी, मैं तुमको बहुत प्यार करता हूँ, मैं तुम्हारे ही साथ ब्याह करूँगा। सब पाठक मिलकर हरि हरि बोलो भाई!

बम् भोलानाथ! चन्द्र तो पुरुष है! अब डबल मात्राके बिना

काम नहीं चल सकता।

हम लोगोंके मतसे चन्द्र पुरुष है, मगर विलायती शर्मा लोगोंके मतसे चन्द्र कोमलांगी कामिनी है। हमारे मतमें चन्द्र 'हि' He है, और अँगरेजोंके मतसे चन्द्र 'शि' She है *। अब क्या उपाय है? चन्द्र वास्तवमें हि है या शि, इसका निश्चय कैसे हो?

असल बात तो यह है कि इस बारेमें संसारके साथ आजतक मेरा मत नहीं मिला। इस बारेमें मुझे तरह तरहके सन्देह होते हैं। जो वाजिदअली शाह लखनऊ शहरसे चुपचाप मटियाबुर्जमें जा कर रहे और वहाँ हंस-हंसी कबूतर-कबूतरी आदिके साथ खेलते—गुलाब-जलकी नहरमें नहाते—और अपने ही समान सोनेके पिंजरेमें पड़ी हुई बुलबुलको घीका पुलाव खिलाते थे वह He थे या She? और जिस रानीने देश—प्रेमके कारण ऐहिक सुख—सम्पत्तिको लात मार दी,—राजपुरुषोंकी शरणमें जानेके बदले भीख माँगना अच्छा समझकर नेपालके पहाड़ी प्रदेशमें जा कर आश्रय लिया वह He है या She? इससे तो जान पड़ा कि साहससे He या She का निर्णय नहीं होता। तो क्या युद्धचतुरताके द्वारा He या She का निर्णय होना चाहिए? अच्छा, जिस जवानने वार्लियन् दुर्गपर आक्रमण करते समय सबसे आगे पैर बढ़ाया, जिसने फ्रान्सका फिर उद्धार किया उसे He कहेंगे या She? और जिस बेडफोर्डने उसे जालमें फँसानेके लिए उसी जवानके कारागार (क़ैद-

---

*He और She दोनों शब्द अँगरेज़ी भाषाके 'सर्वनाम' हैं। He पुल्लिंगके लिए और She स्त्रीलिंगके लिए काममें लाया जाता है।

खाने) में मर्दके कपड़े पहन रक्खे थे उसे He कहेंगे या She ? नहीं, युद्धकौशलसे भी निर्णय न होगा । अच्छा साधारणतः सुना जाता है कि जो बलवान् हैं वे ही मर्द और जो निर्बल हैं वे ही स्त्री । इसी तरह सही । विद्वद्वर कोम्टने अपनेको नीतिज्ञशिरोमणि मानकर यूरोपियन पण्डितमण्डलीसे 'कर' माँगा था; उसी अतुलप्रतापशालीको जिस मैडम क्लोटिलट डेबोने अपने प्रतापसे वशमें कर लिया उसे She कहेंगे या He ? रोमराज्यके कैसर प्रतापशाली पृथ्वीपति थे; ऐसे तीन कैसरोंको जिस मिसर देशकी रानी क्लिओपेट्राने अपने अधीन रखकर उनपर हुकूमत चलाई उसको She कहेंगे या He ? असल बात तो यह है कि इस जगत्में कौन He है, कौन She है, इसका निश्चय हो नहीं सकता । एक दिन नाटकका तमाशा हो रहा था, उसमें एक स्त्रीपात्रने पार्ट करते करते कहा—"सिंहिनी होय शिवापद सेइहौं ?" और भारतके नवयुवक मन्त्रमुग्धकी तरह उसकी ओर ताकने लगे, उस समय मुझे सचमुच वह नारी सिंहिनी और वे युवक शिवा (सियारी) जान पड़े थे । उस समय यदि कोई मुझसे पूछता कि इनमें कौन He है और कौन She, तो मैं अवश्य कहता कि यह स्त्री He है, और ये देखने-सुननेवाले She हैं । सच तो यह है कि भारतीय युवक कहीं He और सर्वत्र विकल्पसे इट It होते हैं* । इसकी नित्यविधि भी है । जैसे, वे हँसीदिल्लगीमें He, पलँग पर

* It भी अँगरेजीका सर्वनाम शब्द है—इसका प्रयोग नपुंसकलिंगके लिए होता है ।

She और कामकाजमें It होते हैं। वे वक्तृता देनेके समय He, साहबोंके सामने She और मद्यपान करनेपर It हो जाते हैं। फल यह कि वे चाहे He हों, चाहे She अन्तको It होना अनिवार्य है। जो कुछ हो, मुझे अपने ही बारेमें निश्चय नहीं है कि मैं He हूँ या She। उस दिन काली भाटने मेरा नाम लेकर श्यामासे कुछ दिल्लगी की, श्यामाने चटपट दूधसे भरा सिरपरका घड़ा उसके ऊपर पटक दिया और उसकी छातीके किवाड़ोंकी मजबूती जाँचनेके लिए उस पर एक विशेष प्रकारका अस्त्र चलानेकी इच्छा प्रकट की—वह श्यामा तो संसारकी दृष्टिमें हुई She और मैं, जिससे एक दिन रसिक बाबूने जो कहा कि "चौबेजी, आज ऊँघते ऊँघते तुमने बिछौना जला डाला, कलको घरभरमें आग लगा दोगे!" तो उसने डरके मारे भंगकी मात्रा कम कर दी, वह मैं हुआ He। ऐसे ही विचारके कारण तो संसारसे मुझसे पटती नहीं। मतलब यह कि जब मैं खुद अपने He या She होनेका निश्चय नहीं कर सकता, तब चन्द्रके He या She होनेका निश्चय कैसे होगा? अगर चन्द्र He हैं तो मैं She हूँ—क्योंकि मुझे चन्द्रसे प्रेम हो गया है, मैं चन्द्रसे ब्याह अवश्य करूँगा। और शायद मैं सचमुच श्रीचिदानन्द चौबे निकला तो चन्द्र She है। चन्द्र विलायती मतसे She है। अच्छा, तो मैं विलायती ढंगसे ही चन्द्रके साथ ब्याह करूँगा।

इस समय अनेक मत हैं, और उनके अनुसार अनेक काम होते हैं; मैं विलायती मतसे ब्याह करूँगा। देखो न, इस समय विष्णुके दस अवतार भिन्न भिन्न काम देते हैं। मत्स्य (मछली),

कूर्म (कछुआ) और बराह (सुअर) खानेकी टेबिलकी शोभा बढ़ाते हैं। नृसिंहरूपधारी कुत्ते सदा साथ रहते हैं। भारतके युवक लोग वामन होकर भी चन्द्रको छूनेकी—पकड़नेकी चेष्टा करते हैं। वे पहले राम (परशुराम) की तरह माताकी सेवा, दूसरे रामकी तरह स्त्रीकी सेवा करते हैं। उन्होंने तीसरे राम (बलराम) से मद्यपानकी शिक्षा प्राप्त की है। उन्होंने बौद्धमतसे संसारकी अनित्यता मानकर कल्कि अवतारकी तरह संहारमूर्ति धारण की है। इस समय शाक्तमतसे भोजन बनते हैं, और शैव-त्रिशूल (काँटे) में कोंच कोंच कर वे गलेके नीचे उतारे जाते हैं। पीछेसे या साथ ही सुरापान (मद्यपान) अवश्य सेवनीय समझा जाता है। इसके सिवा जेरूसलम×के प्रथम गौरांग (ईसा) के उपदेशानुसार ' भजन ' होता है, नवद्वीपवासी दूसरे गौरांगकी तरह हरिकीर्तन किया जाता है और राधानगरके छोटे गौरांगकी तरह संस्कृत श्लोक पढ़े जाते हैं।

अतएव शशि, पूर्णशशि, मैं तुमको अँगरेजी मतसे She मानकर होशहवास और तन्दुरुस्तीकी हालतमें खुशीसे तुम्हारे साथ ब्याह करता हूँ। मेरे बाद मेरे पुत्र पौत्र भी बिना किसीके साझे सुखपूर्वक तुमपर अधिकार बनाये रख सकेंगे। इसमें तुम या तुम्हारी जगह पर और जो आवेगा वह, अगर कोई आपत्ति करेगा तो वह नामंजूर होगी। तुम्हारी सत्ताईस प्यारियों पर आजसे मेरा पूर्ण अधिकार होगया।

× ईसाइयोंका पवित्र तीर्थस्थान—ईसाकी जन्मभूमि।

अब इस तरह दबे पैरों रोहिणीके साथ गुपचुप बातें करनेसे क्या होगा? इस तरह मुख मोड़ मोड़ कर हँसते, और हलके हलके बादलोंका घूँघट काढ़ कर भागते हुए कहाँतक जाओगे? इति कोर्टशिप।

अथ गान्धर्वविवाह। मैंने तुमको वरमाला पहनाई, तुम मुझे वरमाला पहनाओ।

कन्याने खुद दान किया, वर स्वयं बराती बन आया।
अपना मन ही बना पुरोहित, मड़वा मरघटमें छाया॥

देखो चन्द्र, अब निरालेमें मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ। अब तुम अपने रूप-गौरवका घमण्ड करके जहाँ तहाँ रूपकी वर्षा न करना। जिस समय पुत्रशोकसे पीड़ित माता छाती पीटकर तुम्हारी तरफ देख देख कर रोती होगी, उस समय तुम उसे अपना रूप दिखाकर क्या करोगे? तब कलंकिनी, तू अपने रूपकी राशिको घने बादलोंके भीतर छिपा रखना। जब संसारकी ज्वालाओंसे जले हुए लोग तुम्हारे दर्बारमें आकर फ़र्याद करें, तब उनके आगे अपना रूप लेकर न बैठना; क्योंकि जो संसारकी आगमें जल रहा है उसके लिए वह तीव्र विषके समान होगा। उसको सब पर घृणा हो गई है, वह किसीकी प्रसन्नता या खुशीको देख नहीं सकता। और सुनो— जिसने इस लोकके सारे सुखोंकी चरम सीमा पर पहुँच कर आत्मत्यागकी पूरी तयारी कर ली है उसको भी वृथा आशा बँधाकर इस संसारमें फँसा रखनेकी चेष्टा न करना। तुम पर अब एकमात्र मेरा ही अधिकार है; अब तुम किस तरह दूसरेको आशा बँधाओगी?

सुनो, चिदानन्दके लिए समय-असमय कुछ नहीं है; संयोग—

वियोग भी कोई चीज नहीं है। चिदानन्दको सुखदुःखकी भी कोई परवा नहीं है। तुम सदा मेरे पास आना, अपने सुखदुःखकी बातें मुझसे कहना और मेरी बातें सुनना। मेरी बातें सुनकर भुला न देना—अपने हृदयमें, अपनी अस्थि-मज्जाके साथ उन बातोंको मिला रखना।

मगर देखो, उजियाली रातमें मुझसे मिलने आना—यह सुन्दर रूप लेकर अंधेरी रातमें न निकलना। प्रिये, मेरे कैसे सुखका दिन है, सो तुम्हारे सिवा और कौन समझ सकता है? देखो, आजसे महीने महीने हर महीनेके अन्तमें, इसी गंगातट पर, मैं रात बिताऊँगा। लेकिन याद रक्खो, प्रत्येक पूर्णिमाकी रातको न आना। पंचांग बनानेवाले ज्योतिषियोंसे मुहूर्त पूछ लेना; नहीं तो किसी दिन दुष्ट राहु राहमें तुम्हारा मुँह काला करके तुमको कष्ट पहुँचावेगा। आज पहली ही रातको और अधिक उपदेश करना ठीक नहीं, फिर देखा जायगा।

अब चन्द्र, एक बार इस मनुष्यलोकमें उतर कर गंग-तरंगावलीके ऊपर परीकी तरह नाचो—मैं देखूँ! एक बार काले बादलके भीतर घुसकर—दौड़कर बाहर निकलकर झाँको तो सही! एक बार गहरे बादलमें छेद करके मेरी तरफ मधुर कटाक्षपात करो तो सही! एक बार नक्षत्र नक्षत्रमें परस्पर झगड़ा कराकर, जब वे भिड़ने लगें तब उन दोनोंके दल हटाकर, वेगसे दौड़ो तो सही! एक बार दौड़नेकी थकावटसे निकले हुए पसीनेकी मोती-सरीखी बूँदोंसे सुशोभित मस्तक पर घूँघट काढ़कर गगन-गवाक्षमें बैठकर वायुसेवन करो तो सही!

एक बार निरन्तर अमृतवर्षा करके चकोरोंको तृप्त करो तो सही! एक बार इस शुभ अवसर पर चिदानन्दके हृदयमें उदय होकर भीतरका अन्धकार दूर करो तो सही!—अब चिदानन्द सोता है।

चन्द्र, यह क्या? तुम क्षीरसागरकी लड़की त्रिभुवनविहारिणी होकर भी 'मान' करती हो? चिदानन्दसे तुम्हारा क्या अपराध बन पड़ा? एक बार स्त्री-पुरुषभेदकी जटिलता मिटानेके लिए उदाहरणके तौर पर मैंने श्यामा ग्वालिनका नाम ले लिया था; तो क्या उसीके लिए रूठ रही हो? ऐसी साधारण बातके लिए आज इस तरह रूठना तो अच्छा नहीं मालूम पड़ता। देखो, तुम कलंकिनी हो, तो भी मैंने तुमको ग्रहण कर लिया। तुमसे पूर्वानुराग होनेके कारण आज-तक Lunatic * नाम मैं स्वीकार किये हुए हूँ। ज्योतिषी लोग कहते हैं कि तुम पत्थर हो—तो भी मैंने तुमसे ब्याह कर लिया। वे कहते हैं कि तुममें मनुष्यचिह्न नहीं है—तो भी मैंने तुमको स्वीकार-कर लिया। तो भी ख़फ़गी है?—अच्छा तो यह संसार-गरल-खण्डन गिरितरुशिरोमण्डन किरणचरण मेरे सिरपर रख लो। हो सके तो इस अनन्त नील वृन्दावनमें एक बार बादलका घूँघट काढ़कर मा-निनी राधा बनकर बैठो; मैं एक बार के पैर पकड़ कर अपने जीवनको सफल कर लूँ×। आज मैं चाहे सैकड़ों अपराधोंका अप-राधी हूँ, तुम्हारे द्वारा मेरे सब पापोंका प्रायश्चित्त हो जायगा। तुम

---

* चन्द्रग्रस्त, अर्थात् पागल।

× चिदानन्दने एक बार श्यामा ग्वालिनके भी पैर पकड़े थे; लेकिन दूधके लिए।—लाला मदारीलाल।

मेरे चान्द्रायणव्रतके[1] चन्द्रफलक हो! मुझे वैतरणी[2] पार पहुँचाने-वाले नये ढंगके बछड़े हो!

नहीं मानती?- ऐसा करोगी तो मैं सैकड़ों हजारों ब्याह कर लूँगा। अब चिदानन्दने ब्याहकी नई रीतियाँ सीख ली हैं। उसने आप ही वर, समधी, पुरोहित और घटक[3] बनना सीख लिया है। चिदानन्द अब चाहे जहाँ ब्याह कर सकता है। जब देखूँगा कि नव पल्लवोंसे लदी हुई डाली अपना मुँह बढ़ाकर पत्तोंकी अँगुली मटका कर बुला रही है, बस, उससे ब्याह कर लूँगा। जब देखूँगा कि पद्मिनी स्वच्छ सरोवरके दर्पणमें ग्रीवा बाँकी करके अपना रूप निहारकर खिली उठती है, बस, उसे ब्याह लूँगा। जब देखूँगा कि नदी इन्द्रधनुषका किनारा पकड़े हुए उसीके साथ लहरा लहरा खेल रही है, बस, उसे उसी धनुषकी सौगन्द देकर अपनी चिरसंगिनी बना लूँगा। जब देखूँगा कि अनन्त शय्या (पृथ्वी) पर लेटी हुई गंगा श्वेत वस्त्र (चाँदनी) और मणियोंके आभरणों (तारागणकी परछाहीं) से भूषित होकर सोने लगी, बस, उसके साथ सो रहूँगा। जब देखूँगा कि कुंजकी लता फूलोंके गुच्छोंसे सिंगार करके काले काले केश-कलापको खोलकर सूर्यकी सुनहली कोमल कान्तिसे

---

१ यह व्रत प्रायश्चित्तके लिए किया जाता है।

२ यमलोककी भयानक नदी। इसे सहजमें पार होनेके लिए मृत्युसमय गो-दान किया जाता है।

३ जो लोग कन्याके लिए वर और वरके लिए कन्या खोज देते हैं।

मुग्धाका भाव दिखा रही है, बस, उसकी गोदमें सिर रखकर उसे उसके वरको पहिचनवा दूँगा। चिदानन्दने अब ब्याह करना सीखा है और घटकका काम भी सीख लिया है। अब वह ब्याहके लिए किसीका मुँह नहीं निहारनेका !

पाठकगण ! अगर तुम मेरा कहना मानो, तो मेरी तरह मेरी रायसे ब्याह करो। मैं, कन्याके लिए वर और वरके लिए कन्या खोजना खूब जानता हूँ—तुम्हारे मनकी चीज ढूँढ दूँगा।

वसन्तका कोकिल।

तुम भाई वसन्तके कोकिल, अच्छे जीव हो। जब फूल खिलते हैं, दक्षिण पवन चलता है, यह संसार सुखके स्पर्शसे सिहर उठता है, तब तुम आकर रसिकता शुरू करते हो। और जब दारुण शीतकालमें लोगोंके दाँत कटाकट बोलते हैं, तब कहाँ रहते हो भैया? जब सावन भादोंकी बरसातसे मेरी टूटीफूटी कुटियामें नदी बह चलती है, जब बौछारोंकी कड़ी चोटमें भीगे हुए कौए और चील्हें इधर उधर घर घर घुसती फिरती हैं, तब तुम्हारा यह स्निग्धकृष्णकान्त कमनीय कलेवर कहाँ रहता है? तुम वसन्तके कोकिल हो, और जाड़े बरसातके कोई नहीं?

क्रोध न करना, तुम्हारे ऐसे हम लोगोंमें भी बहुत से हैं। जब रसिक बाबूके यहाँ इलाके परसे आमदनी आती है तब मनुष्यकोकिलोंके कलकण्ठकूजनसे उनका वह निकुञ्जनिकेतन भी गूँज उठता है—कितनी हीचोटी, तिलक, माँग और चश्मोंका बाजार लग जाता है—

कितनी ही कविता, श्लोक, गीत, छोटी अँगरेजी, मोटी अँगरेजी, टूटी-फूटी फटी अँगरेजी, चुराई अँगरेजीके आर्तनादसे रसिक बाबूका बैठकखाना वैसा ही जान पड़ता है जैसे ढाबलीमें कबूतर 'गुटुरगूँ' कर रहे हों। जब उनके घरमें नाच रंग, गाना बजाना, तिथि तेहवार उत्सव निमन्त्रण होता है तब झुंडके झुंड मनुष्यकोकिल आकर उनके घरद्वारको सराय बना डालते हैं—कोई खाता है, कोई गाता है, कोई हँसता है, कोई खाँसता है, कोई तमाखू जलाता है, कोई हँसता हुआ टहलता है, कोई नशेकी मात्रा चढ़ाता है, और कोई टेबिलके नीचे लुढ़कता है। जब रसिक बाबू बाग जाते हैं तब मनुष्यकोकिल चींटियोंकी कतार होकर उनका साथ देते हैं। और जिस रातको, खूब पानीकी झड़ी लगी, रसिक बाबूका जवान लड़का मर गया, उस दिन उनको एक भी आदमी नहीं मिला। किसीकी तबियत अच्छी नहीं थी, इस लिए वह नहीं आ सका; किसीको बड़ा भारी सुख था—पोता हुआ था, इससे वह नहीं आ सका; किसीको सारी रात नींद नहीं आई, इससे नहीं आ सका; कोई रातभर पड़ा सोया किया, इससे नहीं आ सका। असल बात यह है कि वह दिन बरसातका है, वसन्तका नहीं, वसन्तका कोकिल उस दिन क्यों आन लगा?

सो भाई वसन्तके कोकिल, तुम्हारा दोष नहीं है, तुम मजेमें बोलो। इस अशोककी डाल पर बैठो, लाल लाल फूलोंके ढेरमें अपने काले शरीरको, दहकते अंगारोंमें छिपे हुए काले बैंगनकी तरह, छिपाये रखकर एक बार अपने पञ्चम स्वरमें 'कु—ऊः' कहकर पुकारो। तुम्हारे इस 'कु—ऊः' शब्दको मैं बहुत पसन्द करता हूँ। तुम खुद

काले, पराये अन्नसे पैले हुए हो, तुम्हारी दृष्टिमें सभी 'कु' हैं; तो फिर जितना हो सके इसी पञ्चम स्वरमें पुकार कर कहो—'कु—ऊः'। जब इस पृथ्वी पर ऐसी कोई सुन्दर चीज़ देखो जिससे तुम्हारे मनमें डाह, जलन या द्वेष पैदा हो तभी ऊँची डाल पर बैठकर पुकार कर कहना 'कु—ऊः'। क्योंकि तुम सुन्दरतासे शून्य, पराये अन्नसे पले हुए हो। जब देखना, शामकी हवा पाकर पुष्पगुच्छोंसे लदी हुई लता डोल उठी, सुगन्धकी लहरें उठने लगीं—वैसे ही पुकार कर कहना 'कु—ऊः'। जब देखना, असंख्य गुलाब एक साथ खिलकर, अपनी खुशबूसे आप ही मस्त होकर, एक दूसरेके ऊपर गिर रहे हैं, तब अपनी डाल परसे पुकार उठना 'कु—ऊः'। जब देखना, मौलसिरीके बहुत ही घने स्निग्ध श्यामल उज्ज्वल पत्तोंकी शोभा वृक्षमें नहीं समाती—जवानीमें भरी सुन्दरीकी तरह हँस हँस कर, इतरा इतरा कर, हिल डुलकर, टूटफूट कर, उछली पड़ती है; उसके खिले हुए असंख्य फूलोंके सुगन्धसे आकाश मस्त हो रहा है—तब, उसीके सहारे बैठकर, उन्हीं पत्तोंके स्पर्शसे अपने अंग शीतल करके, उसीके गंधसे देह पवित्र करके, उसी बकुल-कुञ्जसे पुकारना 'कु—ऊः। जब देखना, शुभ्रमुखी शुद्ध शरीरवाली सुन्दरी चमेली सन्ध्याके हिमकणोंकी नमी और घोर घामकी कमी पाकर धीरे धीरे मुख खोलनेका साहस कर रही है—तहकी तह असंख्य अकलंक पँखुड़ियोंको विकसित करनेका उपक्रम कर रही है—जब देखना कि भौंरा उस रूपको देखकर आदर-भरे स्वरमें उसके ऊपर—आस-पास गुनगुनाता हुआ चक्कर लगा रहा है—तब, ए कलमुहे ! फिर

'कु—ऊः' कहकर अपने जीकी जलन बुझाना। और जब किसी गृहस्थके आँगनमें अनारकी डाल पर बैठकर देखना कि उस घरकी कुसुमकुमारी कन्यायें लताका डोलना, गुलाबका खिलना, मौलसिरी-का रूपरंग और गन्ध और चमेलीकी निर्मलता एकत्र लेकर क्रीड़ा कर रही हैं, तब उन्हींके मुँह पर, इसी पञ्चम स्वरमें, घरभरको प्रति-ध्वनित करते हुए सबसे पुकार कर कहना—इतना रूप, इतना सुख, इतनी पवित्रता, सब 'कु—ऊः'। यही तुम्हारी जीत है—यही पञ्चम स्वर! नहीं तो इस तुम्हारे 'कु—ऊः' को कोई न सुनता। इस पृथ्वी पर 'ग्लैडस्टन,' 'डिस्रेली' आदिकी तरह—तुम केवल गले-बाज़ीसे जीत गये—नहीं तो तुम्हारा यह काला रंग तुमको सर्वत्र पुरस्कारमें तिरस्कार दिलाता! तुम्हारी अपेक्षा कोयलेका रंग भी अच्छा है। गलेबाज़ीमें इतना गुण न होता, तो निकम्मे नाविल लिखनेवालेको राजमन्त्रीका पद कैसे मिलता? और 'जान स्टुअर्ट मिल' को पार्लियामेंट महासभामें स्थान क्यों न मिलता?

अच्छा तो तुम कोकिल, 'प्रकृति' की बृहत् पार्लियामेंटमें खड़े होकर—नील चँदोवेसे मण्डित और पर्वत—नदी—नगर—निकुंज आदि बेंचोंसे सुसज्जित इस महासभाके भवनमें अपने उसी मधुर पञ्चम स्वरसे 'कू—ऊः' कहकर पुकारो—सिंहासन परसे 'हेस्टिंग्स' तक हिल उठें। 'कु—ऊः!' अच्छा, यही सही; इस कमनीय कण्ठसे 'कु' (बुरा) कहोगे तो 'कु' मान लेंगे, और 'सु' (अच्छा) कहोगे तो 'सु' मान लेंगे। 'कु' के सिवा है क्या? सब 'कु' है। लतामें काँटे हैं; कुसुममें कीड़े हैं; गंधमें विष है; पत्ते सूखते हैं, रूप

फीका पड़ जाता है, स्त्रियाँ छल कपट जानती हैं। ठीक 'कु—ऊः' है, तुम गाओ। किन्तु जब तुम अपने इसी पंचम स्वरमें कहोगे तभी 'कु' मानेंगे—यदि मुर्गे राम 'कुक्कू' करके सबेरेकी सुखकी नींदको 'कु' कहेंगे तो उसे मैं 'कु' नहीं माननेका। उसके गला नहीं है। गलेबाज़ीसे संसार पर शासन चलाया जा सकता है; केवल चिल्लाने चीखनेसे कुछ नहीं होता। अगर तुम्हारे ही पञ्चम स्वरको कोई पा सके तभी वह शब्दमन्त्रसे जगत्को जीत सकता है। लय-पर्दा या कड़ी—मध्यमका कुछ काम नहीं। सर जेम्स मॉकिन्टस अपनी वक्तृतामें फिलासफ़ी (दर्शन) की कड़ी मध्यम मिलानेसे हार गये और मेकाले रेटरिक (अलंकार) का पञ्चम लगाकर जीत गये। सूरदास 'शृंगार'को पञ्चममें गाकर जीत गये हैं, आधुनिक कवियोंके ऋषभ (खड़ी बोली) को कौन सुनता है? देखो, लोगोंके बूढ़े मा—बापोंकी बेसुरी बकबकसे क्या फल देख पड़ता है? किन्तु जब बाबूजीकी बीबीजी बाबूका 'सुर' बाँध देनेके लिए सारंगीकी खूँटीकी तरह उनके कान उमेठकर पञ्चममें गला चढ़ाती हैं, तब तुम्हीं बताओ, बाबू 'पिड़िं पिड़िं,' करने लगते हैं कि नहीं?

मगर यह समझमें नहीं आता कि तुम्हारे स्वरको पञ्चम क्यों कहते हैं? क्या जो मीठा है वही पञ्चम है? हाँ, दो पञ्चम ज़रूर मीठे लगते हैं—एक स्वरका पञ्चम, और दूसरा महावर-लगे छोटे पैरोंके घुँघरूदार बिछुओंका पञ्चम। किन्तु 'सुर' पञ्चममें उठनेसे अच्छा लगता है और पैरोंका पञ्चम नीचे रखनेहीमें मीठा लगता है।

कौन स्वर पञ्चम है, कौन स्वर सप्तम है, कौन मध्यम है, और

कौन गान्धार है, यह मुझे कौन समझायगा? यह हाथीकी चिंघाड़ है, वह घोड़ेकी हिनहिनाट है, वह मोरका शोर है और वह बंदरकी किचकिच है, यह कहनेसे तो मेरी समझमें कुछ भी नहीं आता। मैं नशेवाज़—बेसुरा सुनता हूँ, बेसुरा समझता हूँ, बेसुरा लिखता हूँ—धैवत, गान्धार, निषाद पञ्चमकी परवा नहीं रखता। अगर पखावज, तानपूरा, चिकारा लेकर कोई मुझे सात स्वर समझाने आता है तो उसका गरजना सुनकर मुझको मंगला गायके तुर्त ब्याए बच्चेका शब्द याद आजाता है—उसके पीनेसे बचेहुए निर्जल दूधमें ध्यान बँट जाता है—सुर समझ ही नहीं पड़ता। मैं गानेवालेके निकट कृतज्ञता प्रकट करके मन—वाणी—कायासे आशीर्वाद करता हूँ कि वह दूसरे जन्ममें मंगला गायका बछड़ा अवश्य हो।

अब आरे कोकिल! मैं और तू, दोनों, एक बार पञ्चममें गावें। तू भी जो है, मैं भी वह हूँ। हम दोनों, एक ही दुखके दुखी और एक ही सुखके सुखी हैं। तू इसी फूलोंके बाग़में हरएक वृक्ष पर आनन्दसे गाता हुआ घूमता है, मैं भी इस संसार-काननमें घरघर आनंदसे यह चिट्ठा सुनाता हुआ विचरता हूँ—आ भाई, हम दोनों हिलमिल कर पञ्चममें गावें। तेरे भी कोई नहीं, आनन्द है; मेरे भी कोई नहीं, आनन्द है। तेरी पूँजी यह गला है; मेरी पूँजी यह भंगका गोला है; तू भी संसारमें इस पञ्चम स्वरको पसंद करता है—और मैं भी इसे प्यार करता हूँ। तू पञ्चम स्वरमें किसको पुकारता है? और मैं ही किसे पुकारता हूँ? बतला तो सही कोकिल, किसे पुकारता हूँ?

जो सुन्दर है, उसीको पुकारता हूँ; जो भला है उसीको पुकारता हूँ। जो मेरी पुकार सुनता है उसीको पुकारता हूँ। इसी—जिस आश्चर्यमय ब्रह्माण्डको देखकर कुछ भी न समझनेके कारण विस्मित हो रहा हूँ-इसीको पुकारता हूँ। इस अनन्त सुन्दर जगत्-शरीरका जो आत्मा है उसीको पुकारता हूँ। मैं भी पुकारता हूँ—तू भी पुकार। जानकर पुकारूँ या बेजाने पुकारूँ—एक ही बात है। तू भी कुछ नहीं जानता, और मैं भी। तेरी भी पुकार पहुँचेगी, और मेरी भी। यदि सब पुकारोंको सुननेवाला कोई कान है तो मेरी पुकार क्यों न वहाँ तक पहुँचेगी ? आ भाई, दोनों जने हिलमिलकर एक बार पञ्चम स्वरमें पुकारें।

अच्छा तो फिर 'कुऊः कुऊः' कहनेमें सधे हुए गलेसे तू कोकिल, एक बार पुकार तो सही। कण्ठ न होनेके कारण मैं कभी अपने मनकी बात कह नहीं सका। अगर तेरा यह भुवनमोहन स्वर पाता तो कहता। तू मेरे मनकी वही बात खुलासा करके इस कुसुमकुंजकाननमें एक बार कह मैं सुनूँ। क्या कहना चाहता हूँ—यह भी कहना नहीं जानता, उसी बातको तू कह दे—मैं सुनूँ। चिदानन्दके मनकी बात इस जन्ममें नहीं कही गई—मनकी मनमें ही रही—अगर कोकिलका कण्ठ पाऊँ—कोई अमानुषी भाषा पाऊँ—और नक्षत्र तारागण सुननेवाले हों—तो मनकी बात कह सकता हूँ। इस नील नभोमण्डलमें घुसकर, इस नक्षत्रमण्डलीमें उड़कर कभी क्या मनमाने ढंगसे 'कु—ऊः' नहीं पुकार सकूँगा ? मैं न पुकार सकूँ न सही, तूही कोकिल एक बार मेरी तरफसे पुकार—मैं सुनूँ।

स्त्रियोंका रूप।

बहुतसी सुन्दरियाँ रूपके गौरवसे पृथ्वी पर पैर नहीं रखतीं। सोचती हैं कि जिधर वे लचककर लोचके साथ निकल जाती हैं, उधरके लोगोंकी सुधबुध जवानोकी नदीमें उठनेवाली हाव-भावकी लहरोंमें बह जाती है; एक नवीन जगत्की सृष्टि हो जाती है। वे समझती हैं कि उनके रूपकी आँधी जिधर उठती है उधरके लोगोंका धैर्य फूसकी तरह उड़ जाता है—धर्मका कोट ढह पड़ता है। जब पुरुषोंके मनरूपी सागरमें उनके रूपकी बढ़िया आती है, तब उसमें (पुरुषोंके) कर्म--जहाज, धर्म-नौका और बुद्धि-डोंगी, सब डूब जाते हैं। केवल सुन्दरताका अभिमान रखनेवाली रमणियोंको ही ऐसा विश्वास नहीं है, बहुत से पुरुष भी जब स्त्रियोंकी मोहिनी शक्तिके वशीभूत होकर उनके रूपकी महिमाका बखान करने लगते हैं तब वे भी ऐसी बातें कहते हैं जिन्हें सुनकर बड़ा ही विस्मय होता है। तब वे आकाशके तारागण—चन्द्र, और पृथ्वी परके पर्वत—पशुपक्षी—कीड़े—पतंगे—लता आदिको लेकर उपमाके लिए खूब खींचातानी करते हैं—और फिर उनमेंसे बहुतोंको अपमानित कर उलटे पैरों लौटा देते हैं। वे रूपवती युवतीके मुखमण्डलसे तुलना करनेके लिए पूर्ण चन्द्रमाको निमन्त्रण देकर फिर उसे कलंकित करके लौटा देते हैं। गरीब चन्द्रमा अपने कलंकको छातीसे लगाये रात भरमें अपना काम पूरा करके खिसक जाता है। वे सुन्दरीके मस्तकमें लगे हुए सिन्दूरबिन्दुको देखकर पूर्वदिशाके मस्तककी शोभा जो बालसूर्य हैं उनकी निन्दा करते हैं; सूर्यदेव लाल होकर पृथ्वीको

जलाकर चले जाते हैं। वे रसमयी रमणीके मुखकी हँसीके आगे खिले हुए कमलपुष्प पर सूर्यकी किरणोंके या खिली हुई कोकाबेली पर चाँदनीके नृत्यको कुछ नहीं समझते; तभीसे कमल और कोकाबेली पर कीड़े और पतंगोंका अधिकार हो गया। वे कामिनीके कण्ठहारको देखकर रातमें जगमगाती हुई तारागणकी मालाका तिरस्कार करते हैं; मैं समझता हूँ कि अब वे ज्योतिषका अनुशीलन छोड़कर सुनारी सीखनेमें मन लगावेंगे। वे रसरंगमयी ललनाओंके अंगसञ्चालनमें ऐसी लावण्य-लीला निहारते है कि चाँदनीरातमें धीरे धीरे हिलते हुए वृक्षोंके पत्तोंमें अथवा निरन्तर चलायमान नदीकी हिलोरोंमें चाँदनीकी क्रीड़ा उन्हें कुछ नहीं जँचती। इसीसे शायद वे रातको सो रहते हैं, और कलसी घड़े आदि भरकर नदीको सुखानेकी चेष्टा किया करते हैं। और जब वे स्त्रियोंके नयनोंका वर्णन करने बैठते हैं तब सरोवरमें मलयपवनसे हिलतेडुलते हुए नीलकमलकी कौन कहे, संसारभरकी कोई चीज़ उन्हें अच्छी नहीं लगती।

इन स्त्रियोंकी स्तुति करनेवालोंमें उपमाके अनुभवकी जो शक्ति है उसकी बड़ाई किये बिना नहीं रहा जाता। एक नेत्र, उनकी कल्पनाके प्रभावसे, कभी पक्षी (खंजन, चकोर आदि), कभी जलजीव (मछली आदि), कभी वनस्पति (पद्म, पलाश, इन्दीवर आदि) और कभी जड़ पदार्थ (आकाशके तारे आदि) बन जाते हैं। एक चन्द्रमा उनकी कृपासे कभी स्त्रियोंका मुखमण्डल और कभी पैरोंका नख बन जाता है*। इतना ऊँचा कैलासका शिखर

---

* मेरी समझमें चन्द्रमाके साथ नखकी उपमा बहुत ठीक

और इतनी छोटी कमलकी कली, दोनोंकी उपमा एक ही अंगके साथ देते हैं। इस पर भी पूरा नहीं पड़ता, तब अनार, कदम्ब-पुष्प, हाथीका मस्तक, नगाड़ा आदिको उपमाकी जंजीरमें जकड़कर वाहवाही लूटनेकी कोशिश करते हुए अपनी कुशाग्रबुद्धिका परिचय देते हैं। यह तो सभी जानते हैं कि कहाँ जलचारी छोटा सा पक्षी हंस और कहाँ स्थलविहारी बड़ेभारी डीलडौलवाला चार पैरका पशु हाथी; इनकी चाल एक सी न होना ही स्वाभाविक है। किन्तु कवि-नामधारी जीवोंकी दृष्टिमें ये दोनों ही स्त्रियोंसे अपनी अपनी चाल सीखे हैं—उस पर तुर्रा यह कि ऐसे वैसे हाथीकी चालके साथ इन हंसगामिनियोंकी गतिकी तुलना नहीं करते, हाथियोंके राजा गज-राजकी ही चालको इस गतिके योग्य समझते हैं। सुना जाता है कि हाथी एक दिनमें बहुत दूर जाता है, घोड़ा वगैरह कोई भी पशु उसके बराबर नहीं जासकता। तो फिर जिनको दूरका सफ़र करनेकी ज़रूरत पड़ा करती है वे इन्हीं गजेन्द्रगामिनी कामिनियोंकी सवारी पर ही यात्रा क्यों नहीं करते? जिधर अभी रेल नहीं गई उधर छाँट छाँट कर गजेन्द्रगामिनियोंकी डाक बिठला दी जाय तो कैसा हो?

मैं भी किसी समय कामिनीभक्त कवियोंमें गिना जाता था, और था भी। उस समय मुझे भी इस सारे संसारमें रमणियोंके समान सुन्दर वस्तु और नहीं देख पड़ती थी। चंपा, कमल, कुन्द,

---

होगी। क्योंकि ऐसा करनेसे कवितामें उत्तम पदविन्यास या 'जमक' आ सकता है। यथा—"नखर—निकर—हिमकर—करम्बित—कोकिल-कूजितकुञ्जकुटीरे"। यह ख़ास मेरी बनाई हुई कविता है।—**मदारीलाल।**

कदम्ब, मौलसिरी, गुलाब, बेला आदिक फूल, उस समय कामिनियोंकी कान्तिमें गुँथी हुई कुसुम-मालाओंके आगे कुछ भी नहीं जँचते थे। मैं वसन्तमें फूली हुई पृथ्वीसे भी बढ़कर फूल सी सुन्दरीको प्यार करता था, बरसातमें बढ़ीहुई तरंगमयी नदीसे भी बढ़कर रसवती युवतीका पक्षपाती था। किन्तु अब मेरे वे विचार बदल गये हैं। मुझे दिव्य ज्ञान हो गया है। मैं मायामयी महिला-मण्डलीका मोहजाल काटकर उससे बाहर भाग आया हूँ। मल्लाहके सड़े जालमें फँसा हुआ मच्छ जैसे उसे काटकर भाग जाता है, या मकड़ीके जालमें पड़कर गुबरीला कीड़ा उसे तोड़कर निकल भागता है, अथवा दुष्ट बैल जैसे किसी तरह रस्सी तुड़ा पाने पर पूँछ उठा कर भागता है, वैसे ही मैं भी महिलामण्डलीके मोहजालसे निकल भागा हूँ। मगर इसमें मेरी कुछ करामात नहीं है, यह सब भंग भवानीका प्रताप है। हे भंग भगवती, तुम्हारे जंगल अक्षय हों। तुम रेशमी बोरोंमें विराजमान होकर दिग्विजय करो—चीन, जापान, साइबेरिया, यूरोप, अमेरिका आदि सब देशोंमें तुम्हारी उपासना हो—केवल भारतमें ही नहीं, पृथ्वी भर पर तुम्हारी जयंती मनाई जाय। मगर मैया, मुझ चिदानन्दको न भूल जाना। मैं तुम्हारा दासानुदास हूँ। मैं तुम्हारी कृपासे सर्वसाधारणके उपकारार्थ जी खोलकर अपने मनकी दो चार बातें कहूँगा।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरी बातें सुनकर केवल स्त्रियाँ ही नहीं, बहुतसे पुरुष भी मुझे पागल ठहरावेंगे। ठहरावें, उसमें मेरी कोई हानि नहीं। नई बात जो कहता है वही संसारमें पागल गिना

जाता है । *गेलीलिओने कहा पृथ्वी घूमती है; इटलीके धनी मानी विद्वान् बुद्धिमान् सुनकर हँसने लगे । उन्होंने समझ लिया कि गेलीलिओ पागल हो गया है । उसके बाद बहुत सा समय बीत-गया, अब इटलीके धनी मानी विद्वान् बुद्धिमान् पृथ्वीका घूमना सुनकर नहीं हँसते, और गेलीलिओको भी अब कोई पागल नहीं कहता ।

संसारके सभी लोग सुन्दरताके बारेमें स्त्रियोंकी प्रधानता स्वीकार करते हैं । विद्या बुद्धि और बलमें पुरुषोंको श्रेष्ठ मानकर भी रूपका टीका स्त्रियोंके ही मत्थे मढ़ा जाता है । हाँ, मेरी समझमें मत्थे ही मढ़ा जाता है; नहीं तो पुरुषोंसे बढ़कर स्त्रियाँ रूपवती नहीं होतीं । हे मानमयी मोहिनियो ! मेरे इस अपराधके कारण तुम अपने कुटिल कटाक्षसे कालकूटकी वर्षा कर मुझे भस्म न कर देना—काली नागिनसे भी बढ़कर विषभरी वेणीसे मुझे जकड़ न लेना—अपनी भौंह—कमान पर बाण तान तान कर मुझे मार न डालना ! सच तो यों है कि तुम्हारी निन्दा करते समय मेरा कलेजा धड़कने लगता है । मैं तुमको बहुत डरता हूँ । राह समझकर अगर तुम अपनी नथका फँदा डाल रक्खो तो उसमें बड़े बड़े हाथी फँसकर लटकनकी तरह उसीमें लटकते रह जायँ—यह चिदानन्द क्या चीज़ है ! तुम्हारी नथका लटकन अगर खिसक पड़े तो उससे कई खून हो जाना बहुत संभव है । तुम्हारे चन्द्रहारका एक आध चन्द्रमा भी अगर किसी पर टूट पड़े तो उसके हाथ पैर टूट जाना कुछ विचित्र नहीं।

---

* कोपर्निकस् P. D.

अतएव तुम मुझ पर कोप न करना। और हे रमणीप्रिय कल्पना-प्रिय उपमाप्रिय कविगण, मैं तुम्हारा भी अपराधी हूँ। किन्तु, मैं तुम्हारी उपास्यदेवता स्त्रीमूर्तिकी सुखमयी प्रतिमाको तोड़नेके लिए प्रवृत्त हुआ हूँ—यह सोचकर मुझे मारने मत दौड़ना। मैं इस बातको साबित कर दूँगा कि तुम लोग कुसंस्कारदूषित पौत्तलिक (बुतपरस्त) हो। तुम लोग उपास्य देवताकी प्रकृत (असली) मूर्तिको छोड़कर विकृत (बिगड़ी हुई या नकली) प्रतिमूर्तिकी पूजा कर रहे हो।

संसारमें देखा जाता है कि जिसके सुन्दर बाल होते हैं, वह नकली बालोंसे अपने सिरकी शोभा नहीं बढ़ाता। जिसके निर्मल और दृढ़ दाँत होते हैं, उसे बनावटी दाँतोंकी ज़रूरत नहीं पड़ती। जिसका सुन्दर गोरा रंग होता है, वह पाउडर नहीं मलता। जिसके आँखें हैं, वह काँचकी आँखें नहीं लगाता। जिसके पैर हैं वह लकड़ीके पैरोंका सहारा नहीं ढूँढ़ता। तात्पर्य यह कि जिसके जो चीज़ होती है वह उसके लिए लायँलायँ नहीं करता। जो यह समझता है कि प्रकृतिने उसे अमुक चीज़ नहीं दी वही उसके पानेके लिए यत्न करता है। यही देख—सुनकर मैंने निश्चय किया है कि स्त्रियोंमें रूप रत्ती भर नहीं है। वे सदा अपना रूप बढ़ानेमें ही लगी रहती हैं। किस तरह सुन्दर जान पड़ेंगी, इसी चिन्तामें चूर रहती हैं। अच्छे अच्छे गहने किस तरह मिलेंगे, यही हर घड़ी भावना रहती है। इसीके लिए हर घड़ी चेष्टा किया करती हैं। मैं तो यह कहनेमें भी अनुचित नहीं समझता कि गहने ही उनके लिए जप, तप, ध्यान, ज्ञान, सब कुछ हैं। अपने शरीरको सजानेके लिए वे इतना

यत्न करती हैं, इसीसे मुझे जान पड़ता है कि उनमें सच्ची सुन्दरता अधिक नहीं है। जिसकी नासिका सुडौल सुन्दर नहीं है वही नथकी रस्सीमें लटकनरूपी जगन्नाथको झुलाती है। जिसके कान सुन्दर नहीं हैं वही फल-फूल-पशु-पक्षी-बेल-बूटेदार करनफूल या झुमके लटकाती है। जिसका हृदय अच्छा नहीं है वही सात लड़की फाँसी (सतलड़ी) डालकर पुरुषोंको—विशेषकर दुधमुहे बच्चोंको डराती है। जो बिना गहनोंके भी अपनेको सुन्दर समझेगी वह कभी गहनोंका बोझा लादनेके लिए इतनी व्यग्र न होगी। मर्दलोग गहने न पाकर भी सन्तुष्ट रहते हैं, मगर औरतें बिना आभूषणोंके चार आदमियोंमें मुँह नहीं दिखा सकतीं। अतएव स्त्रियोंके ही व्यवहारसे सिद्ध हुआ कि स्त्रियाँ सुन्दरतामें पुरुषोंसे कम हैं।

प्रकृतिकी सृष्टिपद्धतिको सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि पुरुषोंकी सुन्दरता स्त्रियोंसे अधिक है। जिस फैले हुए कलाप (मोरकी पूँछ) को देखकर मेघका मुकुट इन्द्रधनुष हार मानता है वह कलाप मोरके ही होता है, मयूरीके नहीं। जिस केसर (गर्दनके बालों) से सिंहकी इतनी शोभा है वह सिंहकी मादाके नहीं होता। जो ककुद (पीठ परका उठा हुआ मांस) बैलके सुन्दर मालूम पड़ता है वह गऊके नहीं होता। मुर्गेके जैसी सुन्दर लाल कलँगी सिर पर होती है वैसी मुर्गीके नहीं। इस तरह ध्यान देकर देखनेसे स्पष्ट जान पड़ता है कि उच्च श्रेणीके जीवोंमें भी स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंकी गठन दृढ़ और सुडौल होती है। तब केवल मनुष्योंकी सृष्टिमें विधाता इस नियमको क्यों तोड़ने

लगे ! हे ' विद्यासुन्दर ' नाटककी रचना करनेवाले महाशय ! क्या तुमने मेरे इसी सिद्धान्तके अनुसार अपने नायकका नाम ' सुन्दर ' रक्खा था ? क्या तुम समझ गये थे कि स्त्रियाँ चाहे जैसी 'विद्या'-वती हों, उन्हें पुरुषोंके स्वाभाविक सौन्दर्य और विशाल बुद्धिके आगे हार माननी पड़ती है ?

सुन्दरताकी बहार जवानीकी फसलमें होती है । किन्तु हे अपने रूपके नशेमें अन्धी हुई ललनाओ ! तुम्हारी जवानी कितने दिन टिकती है ? समुद्रकी तरह आते आते ही उतर जाती है । बीससे पचीस तीसके बीच तुम बुढ़िया हो जाती हो । थोड़े ही दिनोंमें तुम्हारे अंग शिथिल पड़ जाते हैं । उमर चढ़ते-ही-चढ़ते तुम्हारे गलेकी जयमालाको गिरा देती है । चालीस पैंतालीस वर्षकी अवस्थामें पुरुषके चेहरे पर जो श्री रहती है वह तुम्हारे चेहरे पर बीस पचीस वर्षके भीतर ही नहीं रहती । तुम्हारा रूप बिजलीकी तरह है, इन्द्र-धनुषकी तरह है, पानीके बुलबुलेकी तरह है । घड़ी भरके लिए न सही; मगर बहुत ही थोड़े दिन ठहरता है । रूप-भोगके लिए जो पागलसे रहते हैं उनका कष्ट मुझे उसी समय जान पड़ता है जब मैं भोजन करने बैठता हूँ । मुझे अपने जीवनमें बड़ा भारी दुःख यही है कि दाल भात रोटी थालीमें परोसते परोसते ही ठंडी हो जाती है । ऐसे ही स्त्रियोंकी जवानीका भात प्रेमकी थालीमें परोसते परोसते ही ठंडा हो जाता है—फिर उसे कोई भी रुचिसे नहीं खाता । अन्तको सँवार-सिंगार-रूपी चटनी मिलाकर आदरका नमक छोड़कर किसी तरह उसे निगलना पड़ता है ।

हे सौन्दर्यका घमंड रखनेवाली नारियो ! सच कहना, क्या क्षणस्थायी होनेके कारण ही तुम्हारे रूपका इतना आदर है ? तुम्हारा रूप ऐसा है कि उसे अच्छी तरह भोगना कैसा, देखना भी असंभव है—देखते ही देखते धूपकी तरह ढल जाता है। क्या इसीसे मर्दलोग तुम्हारे मुखचन्द्रके चकोर बने रहते हैं—तुम्हारे रूप पर धन-धर्म-धैर्य सब वार देते हैं ? तुम्हारा रूप उसी धनके समान है जो अचानक मिल जाता है और फिर वैसे ही हाथसे निकल जाता है; क्या इसीसे तुम उसके ठीक ठीक दाम नहीं बतला सकतीं ? मेरी समझमें तो केवल क्षणभर ठहरनेके कारण ही स्त्रियोंका सौन्दर्य इतना मनोहर नहीं होता; और भी एक कारण है। वह कारण यह है कि पृथ्वीमण्डल पर जितने ग्रन्थकारोंका मत मान्य हुआ है वे सभी पुरुष थे; और उन्होंने अपनी आँखोंमें अनुरागका अंजन लगाकर उस दृष्टिसे स्त्रियोंके रूपका वर्णन किया है । सुनते हैं कि मजनू जिस पर मरता था वह लैला बिलकुल बदसूरत थी । लेकिन वह मजनूके लिये परियोंसे बढ़कर थी । मसल ही मशहूर है, “ दिल आया गधी पर तो परी क्या चीज़ है ।” खैर जो कुछ हो, कहनेका मतलब यह है कि स्त्रियाँ प्रेमकी चीज़ हैं, उन्हें कौन रसिक या कवि साधारण दृष्टिसे देखेगा ! यह आपने देखा ही होगा कि अच्छे आईनेमें बुरी सूरत भी अच्छी देख पड़ती है । हम यदि भुवनमोहन नारीके रूपको प्यारका अंजन लगाकर देखेंगे तो फिर वह पुरुषकी अपेक्षा अच्छी क्यों न देख पड़ेगी ?

हे प्रेमदेव, यूरोपके कवियोंने तुमको अन्धा ठहराया है । बात

झूठ नहीं है। तुम्हारे प्रभावसे कोई भी अपनी प्यारी चीज़के दोष नहीं देख पाता। तुम्हारा अंजन जिसकी आँखोंमें अँज गया वह हमेशा ही विश्व-विमोहन वस्तुओंसे घिरा रहता है। वह विकट मूर्तिको सुन्दर देखता है, वह कर्कश स्वरको अमृतमय मानता है, वह मृत-नीकी उछलफाँदको ललनाकी लावण्यलीलासे भी बढ़कर सुखदायक समझता है। यही कारण है कि चीनदेशमें चिपटी नाककी कदर है, विलायती बीबियोंके समाजमें भूरे बालों और कंजी आँखोंका आदर है, हब्शियोंके देशमें मोटे ओठोंका सम्मान है, और हमारे भारतमें गुदना गुदाये हुए मिस्सी-मलिन मुख-चन्द्रकी शोभा है। इसीलिए मनुष्यसमाजमें स्त्रियोंका आदर है। और अगर कहीं स्त्रियाँ भी मर्दोंकी तरह पेटकी बात ज़बान पर ला सकतीं या लातीं, तो हे प्रेमदेव, उनके गुणसे न सही, कमसे कम तुम्हारे गुणसे तो अवश्य हम सुन पाते कि पुरुषोंके रूपके आगे स्त्रियोंका रूप कुछ भी नहीं है।

परन्तु, यद्यपि स्त्रियाँ अपने भीतरके गुप्त भावको वचनोंके द्वारा प्रकट करनेमें सकुचती हैं, मगर उनके कार्योंमें उस आन्तरिक भावकी झलक दिखलाई पड़ जाती है। आपने प्रायः देखा होगा कि कोई स्त्री किसी स्त्रीको अपनेसे अधिक सुन्दर स्वीकार करना नहीं चाहती, परन्तु पुरुषको सहजहीमें आत्मसमर्पण कर देती है। इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि स्त्रियाँ मन-ही-मन स्त्री रूपकी अपेक्षा पुरुष-रूपको अधिक मानती हैं?

पुरुषोंके 'रूप रूप' चिल्लानेसे ही स्त्रियोंका सर्वनाश हुआ है।

सभी यह समझते हैं कि रूप ही स्त्रियोंका महामूल्य रत्न है—सर्वस्व है। इसका फल यह हुआ कि कामिनियाँ जो कुछ चाहती हैं उसे लोग रूपके ही बदलेमें देना चाहते हैं। इसीसे मनुष्यसमाजके लिए कलंक—रूपिणी वेश्याओंकी सृष्टि हुई है। इसीसे परिवारमें स्त्रियोंको दासी बनकर जीवन बिताना पड़ता है।

मैं यह सुनना नहीं चाहता कि स्त्रियोंकी न ठहरनेवाली सुन्दरता या रूप ही उनकी एक मात्र पूँजी है—संसारसागर पार करनेवाला कर्णधार है। यह बात मैं बहुत दिनोंसे सुन रहा हूँ। सुनते सुनते कान पक गये। अब नहीं सुन सकता। मैं सुनना चाहता हूँ कि नारियोंमें रूपकी अपेक्षा सौगुने हज़ारगुने लाखगुने करोड़गुने महत्त्वके गुण हैं। मैं सुनना चाहता हूँ स्त्रियाँ साक्षात् सहिष्णुता, भक्ति और प्रेमकी मूर्ति हैं। जिन्होंने देखा है कि माता कितने कष्ट सह कर बच्चोंका लालन पालन करती है; जिन्होंने देखा है कि स्त्रियाँ कितने स्नेह और यत्नसे अपने परिवारके रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करती हैं वे ही नारियोंकी सहिष्णुताका कुछ पता पासकते हैं। जिन्होंने कभी किसी सुन्दरीको पति या पुत्रके लिए प्राण देते—धर्मके लिए सांसारिक सुखोंको लात मारते देखा है वे ही कुछ कुछ समझ सकते हैं कि उनके हृदयमें कैसी भक्ति और कैसा प्रेम है।

जब मैं सबमें श्रेष्ठ नारीका आदर्श खोजने लगता हूँ तब मेरे आगे पतिके साथ जल मरनेके लिए तैयार 'सती'की मूर्ति आ जाती है। मैं देखता हूँ कि चिता धकधक जल रही है, सती अपने पतिके पैरोंको आदरके साथ अपनी छातीसे लगाये हुए

अग्निके बीचमें बैठी हुई है। आग धीरेधीरे बढ़कर फैल रही है, सतीके एक अंगको चलाती हुई दूसरे अंगमें लग रही है। सती अग्निमें जल रही है और अपने स्वामीके चरणोंका ध्यान कर रही है। मुख पर शारीरिक या मानसिक कष्टके कोई लक्षण नहीं हैं। मुख खिले हुए कमलके समान प्रसन्न है। धीरे धीरे आग ही आग देख पड़ने लगी। सतीके प्राण निकल गये, शरीर भस्म हो गया। धन्य सहिष्णुता! धन्य प्रेम! धन्य भक्ति!

जब मैं सोचता हूँ कि कुछ दिन हुए, हमारे देशकी अबलायें कोमलांगी होने पर भी इस तरह पतिके लिए प्राण दे सकती थीं तब मेरे मनमें एक नई आशाका संचार होता है। तब मुझे विश्वास होता है कि 'महत्त्व'का बीज हम लोगोंके हृदयमें अभी पड़ा हुआ है। क्या समय आने पर भी हम अपना महत्त्व न दिखा सकेंगे? हे भारतकी नारियो! तुम भारतकी महामूल्य मणियाँ हो! तुमको झूठी रूपकी बड़ाईसे क्या प्रयोजन? तुम अपने सहनशीलता, दया, भक्ति और प्रेम आदि गुणोंको अपनाओ!

फूलका ब्याह।

वैशाखका महीना 'सहालक' का महीना है। मैंने वैशाखकी पहली तिथिको रसिक बाबूके बागमें बैठकर एक ब्याह देखा है। उसीका हाल लिखे रखता हूँ; शायद आगे होनेवाले वरवधुओंको इससे कुछ शिक्षा मिल सके।

चमेलीका ब्याह है। दिनान्त शैशव बीत चला, कली कन्या

ब्याहने लायक हो आई । कन्याका बाप बड़ा आदमी नहीं, छोटासा पेड़ है, और उस पर उसके अनेक लड़कियाँ ब्याहनेको हैं । ब्याहकी बहुत सी बातचीतें हुईं, पर कोई पक्की नहीं हुई । बागका राजा गुलाब, पात्र तो बेदाग है, मगर घराना बड़ा ऊँचा है; इतना उतरकर सम्बन्ध करनेके लिए वह राजी नहीं होता । दुपहरियाके फूलको इस ब्याहमें इनकार नहीं था, लेकिन वह बड़ा रागी (लाल और क्रोधी) है; कन्याके पिताका मन नहीं माना । केवड़ा पात्र तो अच्छा है, किन्तु दिमाग बड़े हैं, पता ही नहीं रहता । इसी प्रकारकी गड़बड़में मधुकर महाराज दूत बन कर चमेलीके पेड़के पास आकर उपस्थित हुए । आते ही बोले—

" गुन ! गुन ! गुन ! लड़की है ? "

चमेलीके वृक्षने पत्ते हिलाकर उत्तर दिया—" है ! "

भ्रमरने पत्तोंके आसन पर बैठकर कहा—"गुन-गुन गुन ! गुन-गुन-गुन ! लड़की देखूँगा !"

वृक्षने डाल झुकाकर, संकोचसे आँखें बंद किये हुए और घूँघट निकाले हुए कन्याको दिखा दिया ।

भ्रमरने एक बार चक्कर लगाकर कहा—" गुन गुन-गुन !, गुन ! देखना चाहता हूँ—घूँघट खोलो ।"

लजीली कन्या किसी तरह घूँघट नहीं खोलती । वृक्षने कहा—" मेरी लड़कियाँ बड़ी लजीली हैं । तुम जरा ठहरो—मैं मुँह खोलकर दिखाता हूँ ।"

भ्रमर 'भन' से उड़गया और गुलाबके बैठकखानेमें जाकर

गपशप लड़ाने लगा। इधर चमेलीकी बड़ी बहन सन्ध्यादीदी जाकर उसे बहुत कुछ समझाने लगी—बोली—"बहन, जरा घूँघट खोलो, नहीं तो वर नहीं आवेगा—मेरी प्यारी, मेरी दुलारी इत्यादि।" कलीने कितनी ही बार कहा—"दीदी, तू जा!" किन्तु अन्तको सन्ध्याके स्निग्ध स्वभावसे मुग्ध होकर चमेलीने मुँह खोल दिया। तब भ्रमर महाशय 'भन' से राजमहलसे उतरकर फिर उपस्थित हुए। कन्याको देखा, जैसा रूप है वैसी ही सुगन्ध है। भ्रमरराज बोले—"गुन गुन-गुन! गुन-गुन-गुन! कन्या गुणवती है। अच्छा घरमें 'मधु' कितना है?"

कन्याके पिता वृत्तने कहा—जितनेका क़रार होगा उतना दे दूँगा, रत्ती भर कम न होगा।

भ्रमरने कहा—गुन-गुन-गुन! आपमें अनेक गुन हैं—मेरा मेहनताना!

वृत्तने डालें हिलाकर कहा——वह भी दूँगा।

भ्रमरने कहा—मेहनतानेकी रक़म कुछ पेशगी न दे डालो! नगद दान बड़ा भारी गुन है,—गुन-गुन-गुन!

क्षुद्र वृत्तने तब खीझकर सब डालें हिलाकर कहा——पहले वरका हाल तो बताओ—वर कौन है?

भौंरा—वर बहुत ही सुपात्र है। उसमें अनेक गुन हैं—गुन-गुन-गुन!

वृत्त—उनका नाम क्या है?

भौंरा—लाला गुलाबचंद। बहुतसे गुन उनमें हैं—गुन-गुन-गुन!

ऐसी बातचीतोंको मनुष्य नहीं सुन पाते, मुझको भंगभवानीकी कृपासे देखने-सुननेकी दिव्य शक्ति प्राप्त हो गई है, इसीसे मैं सुन सका। मैंने सुना, कुलपूज्य मधुकर महाराज पर झाड़कर, छः पैर फैला कर गुलाबका गुणानुवाद गा रहे थे। कहते थे, "गुलाबका घराना बहुत बड़ा है—यह बहुत ही ऊँचा कुल है—इसका रंग ही निराला है। फूलते तो सभी फूल हैं, लेकिन गौरव गुलाबहीका अधिक है; कारण, ये साक्षात् वांछा मालीकी सन्तान हैं—उसने इन्हें अपने हाथसे लगाया है। अगर कहो इस फूलमें काँटे हैं, तो किस कुल या फूलमें नहीं हैं?

जो कुछ हो, किसी तरह ब्याहकी बातचीत पक्की करके भौंरराम भन-से उड़कर गुलाब बाबूके बँगलेमें ख़बर देने गये। गुलाब उस समय हवाके साथ नाच नाच कर हँस हँस कर कूद कूद कर क्रीड़ा कर रहा था; ब्याहकी खुशख़बरीसे खिलकर गुलाबने लड़कीकी उम्रके बारेमें पूछा। भौंरेने कहा—आज ही कलमें खिल उठनेकी उम्र है।

गोधूलिबेलाकी 'लग्न' आनेका समय हुआ। गुलाब स्वयं विवाहयात्राके उद्योगमें लगा हुआ है। झींगुरोंने नौबत बजाना शुरू किया; ममाखीने शहनाईका बयाना लिया था; लेकिन रतौंधी आनेके कारण वह साथ जा न सकी। जुगनुओंने पंशाखे जलाये। आकाशमें तारागणकी आतशबाजी छूटने लगी। कोयल आगे आगे नकीबका काम करती चली। बहुतसे बराती चले। राजकुमार कमल शामकी आबहवा ख़राब होनेके कारण बरातमें शामिल नहीं

हो सके। किन्तु 'दुपहरिया' के सभी घराने आये—सफ़ेद दुपहरिया, लाल दुपहरिया जर्द दुपहरिया आदि सब आकर मौजूद हुए। 'कनैर' के दोनों (सफ़ेद और लाल) घराने प्राचीन समयके राजाओंकी तरह बड़ी ऊँची डाल पर चढ़े हुए आकर उपस्थित हुए। 'बेला' सहबाला बननेवाला था, इस लिए खूब सजधज कर आया। चंपा पीताम्बर पहने आकर खड़ा हुआ, मगर बहुत सी बरांडी पी आया था—मुँहसे उग्र गन्ध निकल रही थी। केवड़ेके झुंड भी सादगीके साथ अपनी बहार दिखाते हुए महकसे महफिलको मस्त कर रहे थे। अशोक नशेके मारे लाल हो रहा था, उसके साथ, एक चींटोंका झुंड मुसाहब होकर आया था। उनका गुणसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं, उलटे दन्तदंशनका भारी भय है,—ऐसे बराती कहाँ नहीं जुटते-और किस ब्याहमें गड़बड़ करके झगड़ा नहीं मचवा देते! कुंद, कुरुवक, कुटज आदि और भी अनेक बराती आये थे। भ्रमर महाराजसे, अगर आपकी इच्छा हो तो, उनका पूरा परिचय प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि उनका जाना-आना सर्वत्र होता है और उन्हें सभी जगह कुछ कुछ मधु भी मिलता है।

मेरा भी निमन्त्रण था, मैं भी गया। देखा, वर पक्षके लोग बड़ी विपत्तिमें पड़े हैं। वायुने सब बरातियोंको लाद लेजानेका ठेका लिया था—उस समय बहुत तूमतड़ाँगसे चला था, मगर कामके वक्त न-जाने कहाँ जा छिपा, खोजने पर भी कहीं पता नहीं लगा। मैंने देखा, वर और बराती, सब चुपचाप सोचमें खड़े हैं। चमेली-की कुल-रक्षाके लिए मैंने ही फूलोंका वाहन बनना स्वीकार कर

लिया। वर और बराती सबको लेकर चमेलीपुरको चला।

वहाँ जाकर देखा, कन्यापत्तकी कामिनियाँ खुशीसे खिल रही हैं; घूँघट खोलकर सुगंध बरसाती हुई सुखकी हँसी हँस रही हैं। हर एक पत्ता एक दूसरेके गलेसे लगा हुआ है। खुशबूकी लूट मची हुई है। रूपका बाजार लगा हुआ है। जुही, मालती, कामिनी, रजनीगंधा आदि सोहागिनोंने स्त्री-आचार कराया। इतनेमें पुरोहित-आकर मौजूद होगये। देखा कि रसिकबाबूकी नौ बरसकी लड़की कुसुमलता—(सजीव फूल-सरीखी) सुई और तागा लिये खड़ी है। कन्याके पिता (वृत्त) ने कन्यादान किया। पुरोहितजीने दोनोंको एक डोरेमें डाल कर गाँठ देदी।

फिर स्त्रियाँ वरको भीतर लेगईं। न-जाने कितनी मधुमयी रसमयी सुन्दरियोंने वहाँ वरको घेर लिया। सीधे स्वभाव और उज्ज्वल भावसे दिल्लगी करते करते नेवांड़ीका मुँह सूख उठा। गुलमेंहदीके रंगीन मुखकी हँसी रोके नहीं रुकती। जुही कन्याकी सखी है, वह कन्याके पास जाकर सो रही। रजनीगन्धाको ताड़का राक्षसी कहकर वरने बड़ी भारी दिल्लगी की। बकुलकी एक तो उम्र कम, उसके उपर जितना गुण है उतना रूप नहीं; वह एक कोनेमें चुपचाप बैठी रही। बड़े आदमियोंकी घरवालीकी तरह मोटी गेंदा-बीबी नीली साड़ी हटाकर रोबके साथ बैठ गई। इतनेमें “अजी उठो, घर जाओ—रात होगई है; क्या यहीं लुढ़क रहोगे काका?” कहती हुई कुसुमलताने मुझे हिलाया। चौंककर देखा; कुछ भी न था। वह फूलोंका रंगीन दिन कहाँ गायब होगया? मैंने सोचा

संसार सचमुच अनित्य है—अभी था, अब नहीं है। वह रमणीय दिन कहाँ चला गया ? वे हँसमुख रसभरी पुष्पनारियाँ कहाँ गईं ? जहाँ सब जायँगे वहीं—स्मृति-दर्पणके तले—'भूत'-सागरके गर्भमें। जहाँ राजा, प्रजा, पहाड़, समुद्र, ग्रह-नक्षत्र आदि गये हैं या जायँगे उसी जगह ध्वंस-पुरमें। इस ब्याहकी तरह सब कुछ शून्यमें लीन हो जायगा, सब हवामें उड़ जायगा—केवल रहेगा क्या ? भोग ? नहीं भोगनेकी चीजके बिना भोग नहीं रह सकता। तब क्या रहेगा ? स्मृति।

कुसुमलताने कहा—उठो न, क्या कर रहे हो ?

मैंने कहा—दूर हो पगली, मैं ब्याह करा रहा था।

कुसुमलता और हँसती हुई पास आकर आदर करके पूछने लगी—किसका ब्याह काका ?

मैंने कहा—फूलका ब्याह।

कुसुमलता—वाह वाह, फूलका ब्याह ? मैं भी तो फूलका ब्याह करा रही थी।

मैं—कहाँ ?

कुसुमलता—यह देखो मैंने फूलोंकी माला गूँथी है।

मैंने देखा उसी बालिकाकी बनाई मालामें मेरे वर और वधू दोनों हैं।

बड़ा बाजार ।

श्यामा ग्वालिनके साथ मुझे चिरविच्छेदकी संभावना देख पड़ती है। मैं जबसे रसिकबाबूके घर आया हूँ तबसे उसका दूध, दही, मक्खन, मलाई खा रहा हूँ। खानेके समय समझता था कि श्यामा केवल परलोकमें सद्गति पानेकी कामनासे ही यह अनन्त पुण्य-संचय कर रही है—जानता था कि संसारके जंगलमें जो लोग पुण्यरूपी मृगको फँसानेके लिये फंदा लिये घूमते हैं उनमें श्यामा बहुत ही चतुर है। मैं नित्य दूध दही खानेके बाद देवगणके निकट प्रार्थना करता था कि श्यामाको उस लोकमें अक्षय स्वर्ग मिले और इस लोकमें भंगकी मात्रा बढ़े। किन्तु इस समय—हाय! मनुष्यका चरित्र कैसी भयानक स्वार्थपरतासे कलंकित है!—इससमय वह दाम माँगती है।

इसी कारण श्यामाके साथ मेरे चिरविच्छेदकी संभावना देख पड़ती है। पहले दिन जब उसने दाम माँगे तो मैंने दिल्लगीमें बात उड़ा दी—दूसरे दिन विस्मित हुआ—और तीसरे दिन गालियाँ देने लगा। अब उसने दूध दही देना बंद कर दिया है। कैसा अन्धेर है! इतने दिन बाद मालूम हुआ कि मनुष्यजाति निहायत खुदगर्ज है—इतने दिन बाद जान पड़ा कि आशाओंको यत्नपूर्वक हृदयके खेतमें रोपकर विश्वासके जलसे उन्हें पुष्ट करना व्यर्थ है। अब मैंने जाना कि भक्ति, प्रीति, स्नेह, प्रणय आदि सब झूठी बातें हैं—आकाशकुसुमके समान निर्मूल हैं—दमबाजियाँ हैं! हाय, मनुष्यजातिका

क्या होगा ! हाय, धनलोभी ग्वालोंकी जातिको कौन उबारेगा ! हाय श्यामा ग्वालिनकी गऊ कब चोरी जायगी !

श्यामाके दूध–दही है; वह देगी–मेरे पेट है, मैं खाऊँगा। उसके साथ यही सम्बन्ध है। इसमें वह दाम किस अधिकारसे माँगती है ? कुछ मेरी समझमें नहीं आता। श्यामा कहती है कि मैं अधिकार बधिकार कुछ नहीं जानती; मेरी गऊ है, मेरा दूध है, मैं दाम लूँगी। वह किसी तरह समझती ही नहीं कि गऊ किसीकी नहीं, गऊ खुद अपनी है, अर्थात् उस पर उसीका अधिकार है; और दूध, जो पीता है, उसीका है।

तथापि, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि संसारमें दाम लेनेकी एक रीति है। केवल खाने–पीनेकी ही सामग्री क्यों, सभी चीज़ें दाम देकर ख़रीदनी पड़ती हैं। दूध, दही, चावल, कपड़ा–लत्ता आदि बाज़ारमें बिकनेवाली चीज़ोंको जाने दीजिए, विद्या–बुद्धि भी दाम देकर ख़रीदनी पड़ती है। कालेजमें दाम देकर विद्या मोल लेनी पड़ती है। बहुत लोग अच्छी बातोंको दाम देकर ख़रीदते हैं। हिन्दू लोग अक्सर दाम देकर धर्म ख़रीदते हैं। यश और मान तो बहुत ही थोड़े दाममें मिल जाता है। अच्छा, अच्छी चीज़ दाम देकर ख़रीदनी होगी—यह नियम तो कुछ समझमें भी आता है; लेकिन यह क्या अन्धेर है कि जो विष खानेसे मनुष्य मर जाता है वह भी तुमको दाम देकर बाज़ारसे ख़रीदना होगा ? मनुष्य ऐसा ही दामका गुलाम है, वह दाम लिये बिना बुरी चीज़ भी किसीको देना नहीं चाहता !

इसीसे, मेरी समझमें, यह जगत् ही एक बड़ा बाज़ार है—इसमें सभी अपनी अपनी दूकान लगाये बैठे हैं। सभीका एक उद्देश्य है—दाम पाना। सभी बराबर पुकार रहे हैं—"हमारी दूकानमें अच्छा माल है—ख़रीदार चले आओ।" सभीका उद्देश्य है कि ग्राहककी आँखोंमें धूल झोंककर रद्दी माल उसके गले मढ़ दें। दूकानदारों और ख़रीदारोंमें बराबर युद्ध चल रहा है, कौन किसे ठग सकता है! इस बाज़ारमें सस्ता ख़रीदनेकी चेष्टाको लोग 'जीवन' कहते हैं।

बहुत सोच-विचार कर चिन्तारूपी मनके दुखको कम करनेके लिए मैंने शामकी भंग दोपहरको ही छान ली। फिर क्या था, भंग-भवानीके अंगमें आते ही वह रंग जमा कि सब ढंग ही बदल गया--दिव्य दृष्टि खुल गई। मैंने आँखें फाड़कर देखा सामने सुविस्तृत संसारका बाज़ार लगा है। देखा, अगणित दूकानदार दूकानें लगाये बैठे हैं—असंख्य ख़रीदार सौदा चुका रहे हैं। देखा, वे दूकानदार और ख़रीदार परस्पर एक दूसरेको अँगूठा दिखा रहे हैं। मैं भी अँगौछा कंधे पर डालकर कुछ ख़रीदारी करनेके लिए बाज़ारकी तरफ़ चला। सबसे पहले रूपकी हाटमें गया। संसारका नियम है कि जो चीज़ घरमें नहीं होती उसीके लिए आदमी बाज़ार जाता है। रूपकी हाटमें जाकर देखा तो वह संसारका मछरहट्टा (मछलीबाजार) निकला। पृथ्वीपरकी परियाँ मछली होकर टोकनीसे ढकी हुई कूँड़ोंमें पड़ी हैं। देखा, छोटी बड़ी रोहू-गिरई-झींगा-इलिश-पूँटी वग़ैरह हर तरहकी मछलियाँ ख़रीदारके लिए पूँछ पटक पटक कर छटपटा रही हैं। जितना बाज़ारका वक़्त बीतता

जाता है उतना ही वे बिकनेके लिए तड़पती हैं। मछलीवालियाँ पुकार रही हैं—" मछली लोगे जी ? कुल—पोखरकी सस्ती मछली यों ही लुटा देंगे। " कोई पुकारती है—" मछली लोगे जी ?—धन-सागरकी मीठी मछली—जो खरीदता है उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता, एक ही जन्ममें सब गतियाँ हो जाती हैं; धर्म- अर्थ-काम-मोक्ष, सब बीबीके श्रीचरणोंकी ठोकरोंसे घरभरमें मारा मारा फिरता है—जिसमें शक्ति हो वह ख़रीद ले। सोनेकी हाँड़ीमें आँ-खोंके ज़लसे उबालकर हृदयकी आगमें कड़ी आँच देकर पकाना पड़ता है। कौन ख़रीदार इतना साहस रखता है—आवे। सावधान ! हीराका काँटा गलेमें फँसनेसे सासरूपी बिल्लीके पैरों पड़ना पड़ता है।—काँटेकी तकलीफ है तो क्या, मछली बड़े मज़ेकी है !—आओ ख़रीदार—चले आओ।" कोई पुकारती है—" आओ, हमारी चटपटी लाज-सरोवरकी मछली ख़रीदो। घीमें, तेलमें, पानीमें, जिसमें चाहे पका लो। लो—लो, आओ; ले जाओ, मज़ेमें जिन्दगी बिताओ। " कोई कहती है—" कीचड़ धोकर चाँद सी मछली लाई हूँ—देखते ही खरीदार पागल हो जाता है। लो लेजाकर अपना घर उजियाला करो। "

यों देख सुनकर मछली ख़रीदने लगा। क्योंकि मेरी रसोई अभी तक मांस-मछलीके मजेसे खाली थी। देखा मछलियोंके दलाल हैं; उनका नाम है पुरोहित। दलालके खड़े होने पर पूछा; दाम क्या है ? उत्तर मिला—दाम है ' जीवन-सर्वस्व '। जो मछली चाहो ख़रीदो, दाम एक ही है। मैंने कहा—अच्छा ये मछलियाँ कब तक

चलेंगी? दलालने कहा--दो-चार दिन, उसके बाद सड़ जायँगी, दुर्गन्ध आने लगेगी। तब यह सोचकर कि इतने महँगे भावसे ऐसी काम-टिकाऊ चीज़ क्यों खरीदूँ, मैं मछरहट्टेसे भागा। यह देख मछलीवालियाँ हाथ मटका मटका कर मुझे गालियाँ देने लगीं।

रूपका बाजार छोड़कर विद्याके बाजारमें गया। देखा, वहाँ फल बिकते हैं। एक जगह टीका-तिलक लगाये, चुटैया फटकारे, रामनामी वस्त्र ओढ़े कुछ ब्राह्मण पके नारियल लिये दूकानपर ख़रीदारोंको बुला रहे हैं। कहते हैं—"हम बेचते हैं घटत्व पटत्व और षत्वणत्व। घरमें अन्न होना ही स्व-त्व है। नहीं तो न-त्व है। द्रव्यत्व, जातित्व, गुणत्व आदि 'पदार्थ' हैं, बापके श्राद्धमें दक्षिणा न देनेसे ही तुम 'अपदार्थ' हो। हमारे पास 'पदार्थ-तत्त्व' नामक एक नारियल है—खानेमें बहुत ही कठिन है। उसके पहले छिलकेमें लिखा है कि ब्राह्मणी ही 'परमपदार्थ' है। अभाव नामक नारियल चार प्रकारका है*।

---

* बंकिम बाबूका अभिप्राय यह है कि नैयायिक पण्डितोंकी विद्या नारियलके समान है। जैसे पके नारियलका गोला जटाओंमें छिपा रहता है वैसे ही उनकी विद्या घटत्व आदि दुरूह शब्दोंमें छिपी रहती है। जैसे नारियल ऊपर सूखा और भीतर सरस मीठा होता है वैसे ही पुराने पण्डितोंकी विद्या है। नैयायिक लोग चार प्रकारका अभाव मानते हैं—अन्योन्याभाव, प्रागभाव, ध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव। अर्थात् अन्योन्यका अभाव, पहलेका अभाव, नाश हो जानेपर अभाव, और अत्यन्त ही अभाव।

तुम्हारे घरमें धन है, हमारे घरमें नहीं है-इसे कहते हैं अन्योन्याभाव। जब तक धन नहीं पाते तबतक प्रागभाव है। वह धन खर्च होजानेसे ध्वंसाभाव होजाता है। रहा अत्यन्ताभाव, सो हमारे घरमें हर घड़ी बना रहता है। अगर यह संशय हो कि अभाव नित्य है या अनित्य, तो हमारे भंडारेमें झाँककर देखो—देखोगे अभाव नित्य ही है। इस लिए हमारे पक्के नारियलको खरीदो। 'व्याप्य' 'व्यापक' और 'व्याप्ति', इस नारियलका सारांश है। ब्राह्मणका हाथ ठहरा व्याप्य, चाँदीका सिक्का हुआ व्यापक, और तुम्हारे दान करनेहीसे हुई व्याप्ति; यह पक्का नारियल खरीदो, अभी सब समझमें आजायगा। देखो भैया, 'कार्य-कारण-सम्बन्ध' बड़ी भारी बात है, रुपया दो अभी एक कार्य होजायगा। कम देना ही अकार्य है। और कारण क्या समझावें यह जो दोपहरकी कड़ी धूपमें चुटी खोपड़ी लिये नारियल बेचने आये हैं, इसका कारण ब्राह्मणी ही है। अगर कुछ न खरीदोगे तो हमारा नारियल लाद लाना अकारण ठहरा। इस लिए नारियल खरीदो—नहीं तो हम इन्हीं नारियलों पर सिर पटककर जान दे देंगे।"

घोर घामकी तपनसे पसीनेमें तर उन ब्राह्मणोंका शरीर और वाग्वितण्डापूर्ण प्रलाप देख सुनकर दया हो आई। मैंने पूछा-"महामहोपाध्यायजी, नारियल लेनेके लिए हम तैयार हैं, मगर आपकी दूकानमें नारियल छीलकर गोला निकालनेके लिए कोई औज़ार भी है?" उत्तर मिला—"नहीं भैया, हम कोई अस्त्र नहीं रखते।" मैंने कहा—"तो फिर नारियल छीलते कैसे हो?"

उत्तर मिला—"हम छीलना नहीं जानते-दाँतोंसे नोच नोचकर खाते हैं।" मैंने ब्राह्मण पण्डितोंको नमस्कार कर पासहीकी दूसरी दूकानमें प्रवेश किया।

ब्राह्मणोंके समाने ही एक्सपेरिमेन्टल साइंस (अनुभूतविज्ञान) की दूकान है। कुछ अँगरेज़ दूकानदार सूखे नारियल, बादाम, पिस्ता, सुपारी वगैरह फल बेच रहे हैं। दूकानके ऊपर बड़े बड़े पीतलके अक्षरोंमें लिखा है—

MESSRS BROWN JONES AND ROBINSON
NUT SUPPLIERS
ESTABLISHED 1757
ON THE FIELD OF PLASSEY.
MESSRS BROWN JONES AND ROBINSON
offer to the Indian Public
A Large Assortment of

NUTS.

PHYSICAL, METAPHYSICAL,
LOGICAL, ILLOGICAL,
AND
SUFFICIENT TO BREAK
THE JAWS AND
DISLOCATE TEETH OF
ALL INDIAN YOUTHS
Who Stand In Need of Having
Their Dental Superfluities
Curtailed.

अर्थात्—

मेसर्स ब्राउन जोन्स और राबिन्सन

अखरोट बेचनेवाले।

स्थापित प्लासीके मैदानमें सन् १७५७.

मेसर्स ब्राउन जोन्स और राबिन्सन्

भारतवासियोंके लिए

बहुतसे बचेहुए अखरोट देते हैं।

स्थूलपदार्थसम्बन्धी, आत्मविद्यासम्बन्धी,

तार्किक, अतार्किक विज्ञान, जो दाँतों और

जबड़ेको तोड़ डालनेके लिए काफ़ी हैं,

उन सब भारतीय नवयुवकोंके लिए,

जो दाँतोंकी बहुतायतको कम

करनेकी आवश्यकता रखते हैं,

दिये जाते हैं।

दूकानदार पुकार रहा है—"आ रे काले बच्चे, Experimental Science (अनुभूत विज्ञान) खायगा, आ। देख फर्स्ट नं० का एक्सपेरीमेंट (अनुभव) घूसा है; इससे दाँत उखड़ते हैं, मत्था फटता है, और हड्डियाँ टूटती हैं। हम सब इन एक्सपेरीमेंटों (अनुभवों) को बिना दाम लिये ही दिखा देते हैं—बस पराया सिर या नर्म हड्डी मिलनी चाहिए। हम लोग स्थूल पदार्थोंका संयोग और वियोग साधनेमें सिद्धहस्त हैं—रसायनके बलसे, बिजलीके बलसे,

अथवा चुम्बकके बलसे जड़ पदार्थोंको अलग अलग करनेमें ही विशेष चतुर हैं; किन्तु सबकी अपेक्षा घूसोंके जोरसे खोपड़ीके खण्ड खण्ड अलग कर देनेहीमें हमारा हाथ सफ़ा है। माध्याकर्षण, योगिकाकर्षण, चुम्बकाकर्षण आदि तरह तरहके आकर्षणोंकी बात हम जानते हैं; लेकिन सबकी अपेक्षा केशाकर्षणका ही विशेष अभ्यास रखते हैं। इस संसारमें जड़ पदार्थोंके तरह तरहके योग (मेल) देखे जाते हैं—जैसे हवामें 'अम्लजन' और 'यवक्षारजन' का सामान्य योग है, पानीमें 'जलजन' और 'अम्लजन' का रासायनिक योग है, और तुम्हारी पीठ और हमारे हाथमें मुष्टियोग है। देखेगा काले लड़के? इन विचित्र बातोंको देखना हो तो सिर बढ़ा दे। देखेगा कि ग्रेबिटेशन (आकर्षण शक्ति) के बलसे ये सब नारियल वगैरह तेरे सिर पर पड़ेंगे; पार्कशन नामके अद्भुत शब्द-रहस्यका परिचय पावेगा और अपने मस्तककी नसोंके गुणसे पीड़ाका अनुभव करेगा। पेशगी दाम दे तो चैरिटी (ख़ैरात) में एक्सपेरीमेंट पा सकेगा।"

मै यह सब देख सुन रहा था। इसी समय सहसा देखा कि अँगरेज़ दूकानदार लोग लाठियाँ लिये झपट कर ब्राह्मणोंके पके नारियलोंके ढेर पर जा पड़े। यह देखते ही दमके दममें ब्राह्मण लोग नारियल छोड़कर रामनामी दुपट्टेको फेंककर अ-कच्छ हो जान लेकर भागे। तब साहब लोग उन नारियलोंको अपनी दूकान पर उठा ले आये और विलायती अस्त्रोंकी सहायतासे छील कर मज़ेसे खाने लगे। मैंने पूछा—"यह क्या हुआ?" साहबोंने कहा—"इसको कहते हैं Asiatic Researches (भारतीय अनुसन्धान)।" तब मैं

इस आशंकासे कि कहीं मेरे शरीरमें भी Anatomical Researehes (चीरफाड़सम्बंधी खोज) न हो, वहाँसे भागा।

वहाँसे साहित्यके बाज़ारमें गया। देखा, वाल्मीकि वगैरह ऋषि लोग अमृत-फल बेच रहे हैं। फिर देखा, और कुछ लोग लीची, अमरूद, अनानास, अंगूर, अनार आदिक स्वादिष्ट फल बेच रहे हैं—मालूम हुआ कि यह अँगरेजोंका साहित्य है। और भी एक दूकान देखी—उसमें असंख्य बालक और औरतें बेच-खरीद रहे हैं। भीड़के मारे भीतर नहीं घुस सका, बाहरहीसे पूछा—"यह काहेकी दूकान है"

बालकोंने कहा—"हिन्दी साहित्यकी।"

मैं—"बेचता कौन है?"

उत्तर—"हम ही बेचते हैं। दो एक बड़े ब्यापारी भी हैं। उनके सिवा कुछ कथरी-कवि भी हैं। उनका परिचय प्राप्त करना हो तो समस्यापूर्तिके मासिकपत्र देखो।"

मैं—"अच्छा, इस मालको ख़रीदता कौन है?"

उत्तर—"हमी लोग।"

माल देखनेकी इच्छा हुई। देखा, अख़बारके कागज़में लिपटे हुए कुछ कच्चे केले हैं।

वहाँसे तेलियोंकी पट्टीमें गया। देखा, दुनियाभरके उम्मेदवार और मुसाहब तेलीके रूपमें तेलका भाँड़ा लिये कतार बाँधे इस सिरेसे उस सिरे तक बैठे हैं। तुम्हारे श्रीचरणोंमें कोई जगह ख़ाली सुन पाते ही, तुम्हारे पैर पकड़कर, तेलका भाँड़ा निकालकर, तेल

मलने बैठ जाते हैं। कोई जगह ख़ाली न होनेपर भी, शायद हो—इस आसरेसे पैर पकड़कर तेल मलने लगते हैं। तुम्हारे पास नौकरी नहीं है, न सही—नक़द रुपया तो है, अच्छा वही दो, तेल मलते हैं। किसीकी प्रार्थना है, जब तुम अपने निराले बाग़में बैठकर बरांडीकी बोतल ख़ाली करोगे तब मैं तुम्हारे तलवोंमें तेल मलूँगा—मेरी बेटीका ब्याह होजाना चाहिए। किसीकी अर्दास है, मैं तुम्हारे कानोंमें बराबर ख़ुशामदका ख़ुशबूदार तेल छोड़ूँगा—मेरे मकानकी टूटी दीवार पक्की करा दीजिए। किसीकी कामना है, तुम्हारी दयादृष्टिसे मेरा खबरका कागज़ (समाचारपत्र) चल निकले, मैं तुम्हारे लिए दिनको रात और रातको दिन लिख सकता हूँ।

सुननेमें आया कि इन तेलियोंकी खीचतानमें कितनोंके पद टूट गये। मुझे खटका हुआ, कहीं कोई तेली भंगके लिए चिदानन्दके चरणोंमें भी तेल न मलने लगे! मैं वहाँसे भी भागा।

उसके बाद यशके हलवाई-हट्टेमें गया। समाचारपत्रसम्पादक—नाम-धारी हलवाई गुड़ और विलायती चीनी मिली हुई सड़ी बासी मिठाई नगद दाम लेकर बेच रहे थे। राह-चलतोंको ज़बर्दस्ती पकड़कर वह माल उनके गले मढ़ रहे थे—उसके बाद दाम न मिलने पर कपड़ा तक उतार लेनेके लिए उतारू हो जाते थे। इधर उनकी उस यशकी मिठाईकी दुर्गन्धके मारे रास्ता चलनेवाले लोग नाकमें कपड़ा दे देकर इधर उधर भागते थे। दूकानदार लोग बिना खोयेकी गुड़—मिली चीनीकी विचित्र मिठाई बनाकर सस्ते भावमें बेच रहे थे। उनमें कोई रुपये आठ आनेके लिए, कोई सिर्फ़ खा-

तिरके लिए, और कोई केवल शामकी ब्यालूके लालचसे यश बेचते हैं। कुछ ऐसे सस्ता माल बेचनेवाले भी हैं जो सिर्फ़ बाबूसाहब या भैयासाहबकी गाड़ी पर हवा खा आनेके लिए ही यशके ढेर लुटा देते हैं।

उसी बाज़ारमें एक तरफ़ राजकर्मचारी लोग हलवाईके रूपमें राय बहादुर, राजाबहादुर ख़िताब-ख़िलत, निमन्त्रण, धन्यवाद वग़ैरह तरह तरहकी मनोहर चमकीली मिठाइयाँ लिये दूकान खोले बैठे हैं; और चंदा, सलाम, डाली, खुशामद, अस्पताल खुलवाना, रास्ता-घाट बनवाना इत्यादि मूल्य लेकर अपनी मिठाई बेच रहे हैं। लेकिन बिक्रीका प्रबन्ध ठीक नही। कोई सर्वस्व समर्पण करके भी कुछ नहीं पाता, और कोई सिर्फ़ सलाम करके मन भर बाँधे लिये जाता है।

इसी तरह अनेक दूकानें देखीं; किन्तु सभी जगह सड़ा माल आधे दामों पर बिकते पाया, कहीं खरा माल न देख पड़ा। केवल एक दूकान ऐसी देख पड़ी, परन्तु उस दूकानमें ख़रीददार एक न देख पड़ा। देख क्या पड़ता, दूकानके भीतर बहुत ही घना अन्धकार था—कुछ भी न सूझता था। पुकारने पर भी दूकानदारका पता न चला—बाहरसे केवल एक प्रकारका भय पैदा कर देनेवाला अनन्त गर्जन सुनाई पड़ा। अस्पष्ट प्रकाशमें बाहरके तख़्तेका लेख पढ़ा। उसमें लिखा था——

यशकी दूकान।

बिकनेकी चीज़—अनन्त यश।

बेचनेवाला—काल ।

मूल्य—जीवन ।

ज़िन्दगीमें कोई इसके भीतर प्रवेश नहीं कर सकता ।

और कहीं सुयश नहीं बिकता ।

पढ़कर मैंने सोचा, मुझे ऐसा यश न चाहिए । चिदानन्द चौबेकी जान सलामत रहेगी तो बहुतेरा यश हो रहेगा ।

'विचार' के बाज़ारमें गया । देखा, वह कसाईखाना है । टोपी माथे पर लगाये—शमला माथे पर रक्खे छोटे बड़े कसाई छुरी हाथमें लिये पशुओंको काट रहे हैं । भैंसे बगैरह बड़े बड़े जानवर सींग छुड़ाकर भागे जाते हैं, और बकरी भेड़ें बगैरह छोटे और भोले जानवर जान दे रहे हैं । मुझे देखते ही एक कसाई बोल उठा —यह भी बैल है, इसे भी काटना होगा । मैं सलाम करके भागा ।

अब बड़ा बाज़ार घूमनेकी इच्छा नहीं रही, तो भी श्यामा पर गुस्सा था, इस लिए एक बार दहीहट्टा देखे बिना न लौट सका । जाकर पहले ही देखा, वहाँ खुद चिदानन्द चौबे ग्वाला, चिट्ठा—रूपी सड़े मट्ठेकी मटकी लिये बैठे हैं । आप वही मट्ठा खाता है, और औरोंको भी खिलाता है ।

वैसे ही चौंक पड़ा, भंग उतर गई, आँखें खोलकर देखा, देखा कि रसिक बाबूके घरमें ही हूँ । मगर मट्ठेकी मटकी सचमुच पास रक्खी हुई है । श्यामा मट्ठा लेकर मुझे मनाने आई है, कहती है—"चौबेजी, खफ़ा न होना। आज दूध या दही कुछ नहीं बचा-इतना मट्ठा लाई हूँ । इसके दाम न देने होंगे ।"

मेरा दुर्गोत्सव।

दशहरेके दिन मुझसे किसने इतनी भंग पी लेनेके लिए कहा था ! मैंने क्यों भंग पी ली ! मैं क्यों (देवीकी) प्रतिमा देखनेके लिए गया ! जो फिर कभी देख नहीं सकता, वही मैंने क्यों देखा ! यह इन्द्रजाल किसने दिखाया ?

मैंने देखा, कालका प्रबल प्रवाह बड़े वेगसे विश्वब्रह्माण्डमें वहा चला जा रहा है—मैं भी उसीमें एक छोटी सी डोंगी पर बैठा हुआ हूँ। देखा, अनन्त अपार अन्धकार है—उस प्रवाहमें आँधीसे बड़ी बड़ी लहरें उठ रही हैं। बीच बीचमें उज्ज्वल नक्षत्र कभी दिखलाई पड़ते हैं, कभी छिप जाते हैं, और फिर कभी निकल आते हैं। मैं अकेला ही हूँ—अकेले होनेसे डर मालूम पड़ने लगा। बिल्कुल ही अकेला हूँ, माता भी पास नहीं। मैया ! मैया ! कह कर पुकार रहा हूँ। मैं इस काल—सागरमें मैयाको खोजने आया हूँ। मैया कहाँ है ? कहाँ मेरी मैया है ? कहाँ हो चिदानन्दकी जननी भारतमाता ? इस घोर समयसमुद्रमें कहाँ हो तुम ?

सहसा स्वर्गीय बाजोंके शब्दसे कान भर गये। आकाशमें, प्रातःकालके अरुणोदयका ऐसा ललाई लिये उज्ज्वल प्रकाश छिटक गया। शीतल मंद पवन चलने लगा। तरंगपूर्ण जलराशिके ऊपर—दूर पर मैंने देखा, सुवर्णमढ़ी सप्तमीकी प्रतिमा शरदकी शोभामें शोभायमान है। जलमें हँसती है, तैरती है, और विमल प्रकाश फैलाती है। यही क्या मैया है ? हाँ, यही मैया है। पहचाना, यही

मेरी जननी जन्मभूमि है। यह मिट्टीकी—अनन्तरत्नधारिणी इस समय कालकी कोखमें डूबने चली है। रत्नभूषित दस भुजायें दशों दिशायें हैं, जो कि दस तरफ़ फैली हुई हैं; उन भुजाओंमें जो शस्त्र देख पड़ते हैं वे ही तरह तरहकी शक्तियाँ हैं। पैरोंके नीचे शत्रु कुचला पड़ा हुआ है—चरणाश्रित वीर सिंह शत्रुको उठने नहीं देता!——यह मूर्ति इस समय नहीं देखूँगा—आज भी नहीं देखूँगा-कल भी नहीं देखूँगा—काल सागरके पार पहुँचे बिना नहीं देखूँगा—किन्तु एक दिन जरूर देखूँगा। मैंने फिर मग्न होकर उस कालके स्रोतमें दशभुजा अनेकशास्त्रधारिणी शत्रुमर्दिनी वीरेन्द्रवाहना भगवती भारतमाताकी सुवर्णमयी मूर्ति देखी; देखा—प्रतिमाकी दाहिनी ओर भाग्यरूपिणी लक्ष्मी और बाईं तरफ विद्याविज्ञानमयी सरस्वती हैं। संगमें बलरूपी कार्तिकेय और कार्यसिद्धिरूपी गणेशजी विराजमान हैं।

मालूम नहीं कहाँसे फूल मिल गये—मैंने उस प्रतिमाके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि चढ़ाई और कहा——जयं सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे, हमारे सब प्रयोजनोंको साधनेवाली! असंख्य सन्तानोंका पालन करनेवाली अन्नपूर्णे! धर्म—अर्थ—काम—मोक्ष और कर्मफलरूप सुख दुःख देनेवाली मैया! मेरी यह पुष्पाञ्जलि ग्रहण करो। भक्ति, प्रीति, प्रवृत्ति, शक्ति आदि पुष्पोंको हाथमें लेकर मैं यह श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पण करता हूँ—तुम इस अनन्त जलमण्डलसे निकलकर एक बार जगत्के—अपने पुत्रोंके निकट यह विश्वविमोहिनी मूर्ति प्रकट करो। आओ मैया, नवीन रंगसे रँगी हुई, नवीन बल धारण किये

हुए, नवीन दर्पसे भरी हुई, नवीन स्वप्न देखती हुई मैया आओ, घरमें आओ—हम तुम्हारे ३२ करोड़ सन्तान एक स्थानमें एक साथ ६४ करोड़ हाथ जोड़कर तुम्हारे श्रीचरणोंकी आराधना करेंगे। ३२ करोड़ कण्ठसे आकाशमण्डलको कँपाते हुए कहेंगे—"मैया जननी अम्बिके ! धात्रि धरित्रि धन-धान्य-धारिणि ! नगांकशोभिनि ! नगेन्द्रबालिके ! शरत्सुन्दरि चारुपूर्णचन्द्रभालिके !" पुकारेंगे,—"सिन्धुसेविते सिन्धुपूजिते सिन्धुमन्थनकारिणि ! शत्रुओंको मारनेके लिए दस भुजाओंमें दस वस्त्र धारण करनेवाली ! अनन्त-श्री-सम्पन्ना अनन्त-काल-स्थायिनी ! हे अनन्तशक्ति, अपने सन्तानोंको शक्ति दो ! हम तुमको क्या कहकर पुकारें मैया ? हम इन ३२ करोड़ सिरोंको इन चरणोंके ऊपर गिरावेंगे—सब मिलकर ३२ करोड़ कण्ठोंसे तुम्हारा नाम लेकर हुंकार करेंगे—३२ करोड़ शरीर तुमको अर्पण कर देंगे—न हो सकेगा तो ६४ करोड़ आँखोंसे तुम्हारे लिए रोएँगे। आओ मैया, घरमें आओ—जिसके ३२ करोड़ बच्चे हैं उसे चिन्ता काहेकी ?"

देखते-ही-देखते वह प्रतिमा उसी अनन्त कालसमुद्रमें डूब गई—फिर न देख पड़ी ! अन्धकारमय आकाश तक वह तरंगपूर्ण जलराशि व्याप्त हो गई—उसीमें सारा विश्व-संसार डूब गया ! तब मैं व्याकुलतासे आँखोंमें आँसू भरके हाथ जोड़ कर पुकारने लगा—उठो मैया सुवर्णमयी भारतमाता ! उठो मैया, अब हम सपूत होकर सुराह पर चलेंगे—तुम्हारा सिर ऊँचा करेंगे। उठो मैया, देवी, देवताओंपर अनुग्रह करनेवाली—अब हम नीच स्वार्थपरता छोड़कर

भ्रातृवत्सल बनेंगे, औरोंका मंगल साधेंगे—अधर्म, आलस्य, इन्द्रियोंकी भक्ति छोड़ देंगे—उठो मैया, हम अकेले पड़े रो रहे हैं, रोते रोते आँखें फूटी जाती हैं मैया! उठो उठो मैया भारतमाता!

मैया नहीं उठीं! क्या नहीं उठेंगी?

आओ भाइयो, हम इसी अन्धकारमय काल-सागरमें चलो कूद पड़ें। आओ हम सब ६४ करोड़ भुजाओंसे माताकी मूर्ति उठाकर ३२ करोड़ सिरों पर लादकर अपने अपने घर ले आवें। आओ, अन्धकार है तो डर क्या है? ये जो नक्षत्र बीच बीचमें दिखलाई पड़ते हैं, वे ही राह दिखावेंगे—चलो! चलो! असंख्य भुजाओंसे इस काल-सागरको ताड़ित मथित और व्यस्त करके हम तैरेंगे—उस सुवर्णप्रतिमाको मस्तक पर लेआवेंगे। डर क्या है? न होगा डूब जायँगे; बिना माताके यह जीवन किस कामका? आओ, प्रतिमाको उठा लावें। पूजाकी बड़ी धूमधाम होगी। हम लोग उसी मातृपूजाके अवसर पर विरोध-बकरेको सत्कीर्तिके खड्गसे मैयाके आगे भेंट चढ़ावेगें (बलिदान करेंगे)—पूर्वसमयके कितने ही ऐतिहासिक शंख बजाकर माताका गुणगान करेंगे—कितनी ही शहनाइयाँ भैरवी और सोहनीमें माताकी महिमा सुनावेंगी—और हम आनन्दविह्वल होकर नाचेंगे। बड़ी भारी पूजाकी धूम होगी—अनेकों ब्राह्मण विद्वान् जमा होंगे और कहेंगे—जय अम्बे—अम्बिके—अम्बालिके—

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

कितने ही देशी परदेशी सज्जन—ऊँच नीच सब—आकर मैयाके चरणोंमें प्रणाम करेंगे——कितने ही दीन दुखी प्रसाद खाकर पेट पालेंगे ! कितनी ही अप्सरायें नाचेंगी—गन्धर्वगण गायँगे—कितने ही करोड़ भक्त गद्गद होकर पुकारेंगे—मैया ! मैया ! मैया !—

जय जयदात्री जय धात्री, जय दुर्गे दुर्गतिहर्त्री ।
जय वरदायिनि जय सुखदे, जय भगवति मंगलकर्त्री ॥
खल-दल-दलनी शान्तिमयी, स्वर्णभूमि, जय सिन्धुसुते ।
जन्मभूमि जय जय जननी, कोटि कोटि सन्तानयुते ॥
चिदानन्द-जननी देवी, जगदम्बे आनन्दमयी ।
पुत्रोंको ले लगा हृदयसे, जिससे हम हों जगज्जयी ॥
पाप ताप भय शोक मिटे, भक्ति शक्ति उत्साह बढ़े ।
राग द्वेष आलस्य हटे, भ्रातृभावका रंग चढ़े ॥

एक गीत ।

मैंने कहा——सुन श्यामा, तुझे एक गीत सुनाऊँ । श्यामा बोली, मुझे अभी गीत सुननेका समय नहीं है—दूध दुहनेका समय हो आया है ।

मैं——“ आवहु आवहु बन्धु——”

श्यामा——छी छी ! मैं क्या बन्धु हूँ ?

मैं——हरि हरि ! तुम ‘ साठा–पाठा,’ बन्धु क्यों होने लगीं ? मेरे गीतमें है—“ आवहु आवहु बन्धु बसिय आधे आँचर महँ ”

मैं गाने लगा; श्यामा भी दोहनी रखकर बैठ गई । मैंने आदिसे अन्त तक गीत गाया ।—

आवहु आवहु बन्धु, बसिय आधे आँचर महँ ।
दृग भरि देखहुँ आजु साधसों प्यारे, तुम कहँ ॥
बहुदिनमहँ विधि दियो, बन्धु, तुमसम मनको धन ।
तुम मेरे सरवस्व, तुम्हैं दीन्हों मैं जीवन ॥
मनिमानिक हौ नहीं, गरेको हार करहुँ जो ।
कुसुम नहीं हौ, करि सिंगार मैं सीस धरहुँ जो ॥
हे गुणनिधि ! विधि कियो मोहि नहिं नारी सुन्दर ।
तुम्हैं साथ ले देश देशमैं फिरतिउँ भूपर ॥
आवति है जब यादि बन्धुवर, मोहिं तुम्हारी ।
वृन्दावनकी ओर लखहुँ, सब सुरति बिसारी ॥
बिखरे बारन बाँधि, रसोईघरमहँ सोवहुँ ।
तुव गुन गावहुँ बन्धु, धुआँको मिस करि रोवहुँ ॥

हिन्दी भाषामें ऐसा ही और एक मोहनमन्त्र सुननेकी बड़ी ही साध है । जब पहलेपहल यह गीत कान लगाकर जी भर कर सुना था, तब इच्छा हुई थी कि इस नील गगनमण्डलके तले एक साधारण पक्षी बनकर यही गीत गाऊँ—जी चाहा था कि उस विचित्र कल्पनाकुशल कविकी प्रकृति-वंशीमें यही स्वर फूँक दूँ—मेघोंके ऊपर जो वायुचक्र शब्दशून्य है, जहाँसे पृथ्वीका कोई दृश्य नहीं देख पड़ता, वहीं बैठकर उसी वंशीमें, अकेले यही गीत गाऊँ । यह गीत मुझे अब तक नहीं भूला; इसे कभी भूल भी नहीं सकूँगा ।—

'आवहु आवहु बन्धु*—'

लोगोंके मनमें क्या है, सो तो कुछ कह नहीं सकता. किन्तु मैं चिदानन्द चौबे नहीं समझता कि इन्द्रियकी तृप्तिमें भी कुछ सुख है। जिस पढ़पशुको इन्द्रियतृप्तिके लिए बन्धुको बुलानेकी उत्कण्ठा हो वह कभी चिदानन्दका चिट्ठा पढ़ने न बैठे। मैं विलासी आदमीके मुँहसे 'आवहु आवहु बन्धु' सुनना नहीं चाहता। 'आवहु आवहु बन्धु' का अर्थ संसारमें मुझे यही जान पड़ता है कि मनुष्य मनुष्यके लिए है—एक हृदय अन्यके हृदयके लिए है—वही हृदयसे हृदयका स्पर्श, हृदयसे हृदयका मिलना, मनुष्यजीवनका सुख है। इस जन्ममें मनुष्यके हृदयको परखो, देखोगे, उसमें केवल प्यास है—चाह है—अन्यहृदयकी कामना है। मनुष्यका हृदय निरन्तर दूसरे हृदयको पुकारता है— कहता है—'आवहु आवहु बन्धु।' मनुष्यकी बड़ी बड़ी वासनायें शरीररक्षाके लिए छोटी छोटी प्रवृत्तियोंसे कहती हैं—'आवहु आवहु बंधु।' तुम नौकरी करते हो अपने पेटके लिए; किन्तु यशकी चाह करते हो दूसरेका अनुराग आदर पानेके लिए—जनसमाजके हृदयको अपने हृदयसे मिलानेके लिए। तुम जो परोपकार करते हो उसका कारण पराये हृदयके क्लेशका अपने हृदयमें अनुभव ही है। तुम जो क्रोध करते हो उसका कारण तुम्हारे मनके माफिक काम न होना ही है। हृदय हृदयसे

* इसी तरह सारे पद्यके खण्ड खण्ड करके उनकी व्याख्या की गई है, पाठकोंको मिलाकर देख लेना चाहिए।

नहीं मिलता, यही कारण है कि सर्वत्र 'आवहु आवहु बंधु' की पुकार सुन पड़ती है। सब कर्मोंका मूलमन्त्र यही 'आवहु आवहु बंधु' है। जड़ जगत्का नियम है आकर्षण, अपनी ओर खींचना। बड़े ग्रह छोटे ग्रहोंको पुकारते हैं—'आवहु आवहु बंधु।' सौरपिण्ड (सूर्यगोलक) बड़े ग्रहोंको पुकारता है 'आवहु आवहु बंधु।' एक जगत् दूसरे जगत्को पुकारता है 'आवहु आवहु बंधु।' एक परमाणु दूसरे परमाणुको निरन्तर पुकारता है 'आवहु आवहु बंधु।' सारे जड़पिण्ड, ग्रह, उपग्रह धूमकेतु सभी इस मोहनमन्त्रसे बँधे पड़े घूमते हैं। प्रकृति पुरुषको पुकार रही है 'आवहु आवहु बंधु।' जगत्की यह गंभीर ध्वनि बराबर सुनाई पड़ रही है 'आवहु आवहु बंधु'। चिदानन्दका बन्धु क्या आवेगा?

'बसिय आधे आँचर महँ।'

इस घासफूस और झाडझंखाड़से भरे कड़े कण्टकोंसे अगम्य संसारके जंगलमें, हे मंगलमय! हे चिरवाञ्छित! तुमको और क्या आसन दूँ, मेरे इस हृदयके पर्दे पर बैठो। कंकड़ और कण्टकोंसे तुम्हें बचानेके लिए मैं अपने हृदयको उघारता हूँ—मेरे आँचलमें बैठो! हे मिलित! जिससे मेरे मानकी—लज्जाकी रक्षा है—मेरे शरीरकी शोभा है वह आधा तुम भी ग्रहण करो—आधे आँचलमें बैठो। हे दूसरेके हृदय, हे सुन्दर, हे मनोरञ्जन, हे सुखद! पास आओ, मुझे स्पर्श करो, मैं तुमसे मिलूँगा; दूर न बैठना—इसी मेरे शरीरके आधे आँचलमें बैठो। हे चिदानन्द! हे दुर्विनीत! हे

आजन्मविवाहवञ्चित ! तू इस आधे आँचलको ढाकेकी 'कालापाड़' साड़ीका आँचल न समझना । तू जिस आधे आँचलमें बैठेगा उसे बुननेवाला जुलाहा अभीतक पैदा ही नहीं हुआ । मनका नंगापन ज्ञानके वस्त्रसे ढका हुआ है; आधे वस्त्रसे अपने हृदयको ढकना, और आधेमें अपने वाञ्छित बन्धुको बिठलाना । तू मूर्ख है; तथापि यदि कोई तुझसे भी बढ़कर मूर्ख हो तो उससे कहना—'आवहु आवहु बंधु बसिय आधे आँचरमहँ ।'

' दगभरि देखहुँ आजु साधसों प्यारे, तुम कहँ । '

किसीने कभी देखा है ? तुमने बहुत सा धन कमाया है—पर क्या कभी आँख भरकर अपना धन देख पाया है ? तुमने यशस्वी होनेके लिए जान लड़ा दी है—मगर अपने यशको देखकर कब तुम्हारे नेत्र तृप्त हो गये हैं ? रूपकी प्यासमें तुमने सारा जीवन बिता दिया—जहाँ फूल खिलते हैं, फल हिलते हैं, पक्षी फिरते हैं, मेघ घिरते हैं, पहाड़ोंकी चोटियाँ हैं, बहती हुई नदियाँ हैं, झरनोंकी झनकार है, वसन्तकी बहार है, वहीं तुम रूपकी खोजमें फिरे हो—जहाँ बालक अपने प्रसन्न मुखको हिला हिलाकर हँसता है, जहाँ कोई युवती लज्जाके मारे शिथिल शंकित चालसे जाती है, जहाँ भरी जवानीमें पूर्णरूपसे खुली खिली हुई प्रौढा नारी, दुपहरियामें पद्मिनीकी तरह, बिना किसी संकोचके रूपकी छटा छिटकाती है, वहीं तुम रूपकी खोजमें फिरे हो; मगर बतलाओ, कभी आँख भरकर रूप देखा है ? तुमने क्या नहीं देखा कि फूल देखते ही देखते सूख जाता है—फल देखते ही देखते पक जाता है, फिर

गिरता है और सड़ गल भी जाता है, पक्षी उड़ जाते हैं, मेघ चले जाते हैं, पहाड़ भूगर्भमें धस जाते हैं, नदियाँ सूख जाती हैं, चन्द्रमा अस्त होजाता है, नक्षत्र छिप जाते हैं——बालककी हँसीको रोग हर लेता है, युवतीकी लज्जा सदा नहीं रहती, प्रौढाके रूपकी छटा दुपहरियाके साथ ही ढल जाती है । यह संसारका अभाग्य ही है कि कोई किसी चीजको आँख भरकर नहीं देख पाता ।

अथवा, यही संसारका सौभाग्य है कि कोई कुछ भी आँख भरकर नहीं देख पाता । गति ही संसारका सुख है——चञ्चलता ही संसारकी सुन्दरता है । आँखें नहीं तृप्त होतीं । तृप्त होनेवाली आँखें हमको मिलती ही नहीं । मिलतीं तो संसार दुःखसे भर जाता; तृप्तिरूपिणी राक्षसी हमारे सारे सुखको ग्रस लेती । जिस कारीगरने इस परिवर्तनशील संसार, और इन तृप्त न होनेवाली आँखोंको बनाया है, उसकी कारीगरीके ऊपर कारीगरी, यह वासना है कि—'दृगभरि देखहुँ आजु साधसों प्यारे तुम कहँ ।'

हे रूप ! हे सौन्दर्य ! हे हमारी अन्तःप्रकृतिके साथ सम्बन्धयुक्त ! पास आओ, आँख भरकर तुमको देखूँ । दूर बैठोगे तो देख न सकूँगा । क्योंकि देखना केवल आँखोंसे नहीं होता; स्पर्श किये विना या समीप आये बिना मनकी बिजली नहीं दौड़ती; हम लोग सारे शरीरसे देखते रहते हैं; एक मनसे दूसरे मनमें बिजली दौड़ती है तभी आँख भरकर देखना होता है; हाय ! कैसे आँखें तृप्त होंगी ? आँखोंमें तो पलकें हैं !

' बहु दिनमहँ विधि दियो, बन्धु, तुमसम मनको धन । '

मुझे कभी कभी जान पड़ता है कि केवल दुःखकी मापके लिए विधाताने ' दिन ' की सृष्टि की है; नहीं तो कालकी कोई माप न थी—मनुष्यका दुःख अपरिमित होता; हम लोग अब कह सकते हैं कि हम दो दिन, दो महीने, या दो वर्षसे दुख भोग रहे हैं; किन्तु यदि दिन-रातका हेर फेर न लगा होता: समयपथ चिह्नशून्य होता तो सबकी यही धारणा होती कि हम बहुत समयसे दुःखभोग कर रहे हैं; ऐसा होने पर आशा पास न फटकती—कोई यह सोच न सकता कि इतने दिनोंके बाद दुःख दूर होगा। जैसे, जिस मार्गमें वृक्षोंकी छाया नहीं होती उसमें चलना कठिन हो जाता है वैसे ही जीवनपथ पार होना लोहेके चने हो जाता। जिन्दगी घोर कष्टका कारण बन जाती। अतएव इस विशाल विश्वके केन्द्र-स्वरूप सूर्यका मार्ग हमारे दुःखका ' मानदण्ड ' माना जासकता है। दिन गिननेमें सुख है। सुख होनेके कारण ही दुखिया लोग दिन गिना करते हैं। दुखमें दिन गिनना ही जी बहलानेका एकमात्र उपाय है। मगर ऐसे भी दुखी लोग हैं जो दिन नहीं गिनते; दिन गिननेमें उनका जी नहीं बहलता। भूलसे पृथ्वी पर पैदा हो जानेवाला मैं चिदानन्द चौबे किस लिए दिन गिनूँ? मेरे न सुख है, न आशा है, न उद्देश्य है, न कोई कामना है। मैं इस संसारसागरमें बहता हुआ एक तिनका, अथवा संसारकी आँधीमें उड़ता हुआ एक धूलका किनका हूँ। मुझे संसारवाटिकाका एक निष्फल वृक्ष, या संसारगगनका जलहीन मेघ-खंड समझो—मैं क्यों दिन गिनूँगा?

गिनूँगा । मुझे एक दुःख, एक सन्ताप, एक भरोसा है । जिस दिनसे इन्द्रप्रस्थ-राजधानीसे 'पृथ्वीराज' का झंडा उखड़ गया, चित्तौरका 'प्रताप' नहीं रहा, उस दिनसे दिन गिन रहा हूँ । जिस दिन भारतमाताकी छाती पर यवनोंके घोड़ोंकी टाप बजी उसी दिनसे दिन गिन रहा हूँ । हाय ! कहाँ तक गिनूंगा ? दिन गिनते गिनते महीना होता है, महीने गिनते गिनते वर्ष होता है, वर्ष गिनते गिनते शताब्दी होती है । शताब्दियाँ भी कई बीत गई—कहाँ तक गिनूँ ? कहाँ, बहुत दिनोंमें विधातासे मनका धन कहाँ मिला ? जो चाहिए वह कहाँ मिला ? मनुष्यत्व कहाँ मिला ? एकजातीयता कहाँ मिली ? एका कहाँ मिला ? विद्या कहाँ है ? गौरव कहाँ है ? कालिदास कहाँ हैं ? विक्रमादित्य कहाँ हैं ? चन्द्र-गुप्त कहाँ हैं ? भगवान् बुद्ध कहाँ हैं ? भगवान् शंकराचार्य कहाँ हैं ? मनका धन क्या अब नहीं मिलेगा ? हाय ! सबका मनोरथ पूरा होता है, चिदानन्दका ही मनोरथ पूरा न होगा ?

'मनिमानिक हौ नहीं, गरेको हार करहुँ जो ।
कुसुम नहीं हौ, करि सिंगार मैं सीस धरहुँ जो ॥'

विधाताने जगत्को जड़पदार्थमय क्यों बनाया ? रूप जड़ पदार्थ क्यों है ? सभी शरीररहित क्यों न हुए ? अगर होते तो हृदयसे हृदय कैसा मिलता ? अगर रूपके लिए शरीरकी जरूरत थी तो विधाताने तुम्हारा हमारा एक ही शरीर क्यों नहीं बनाया ? ऐसा होता तो फिर वियोगका खटका ही न था । अब क्या हमारा तुम्हारा शरीर एक नहीं हो सकता ? मेरे शरीरमें इतनी जगह है-

उसमें कहीं पर क्या मैं तुमको रख नहीं सकता ? तुमको गलेसे लगाकर हृदयमें लटकाकर रख नहीं सकता ? हाय ! तुम 'मनि-मानिक हौ नहीं, गरेको हार करहुँ जो ।'

और भारतभूमि ! तुम्हीं मणि या माणिक क्यों न हुई ? तुम्हें हार बनाकर गलेमें मैं क्यों न धारण कर सका ? तुम्हें अगर कण्ठमें धारण करता तो जबतक मुसल्मान मेरी छातीमें लात न मारते तबतक उनके पैरोंकी धूल तुमको छू नहीं सकती थी। तुमको सोनेमें मढ़ाकर हृदयमें रखकर देश देशमें दिखाता । यूरोप, अमेरिका, मिसर और चीन देखते कि तुम मेरी कैसी उज्ज्वल मणि हो ।

'हे गुणनिधि ! बिधि कियो मोहि नहिं नारी सुन्दर ।
तुम्हैं साथ ले देश देशमहँ फिरतिउँ भू पर ॥'

पहले बुलाना—'आवहु आवहु बंधु,' फिर आदर या प्यार—'बसिय आधे आँचल महँ,' फिर भोग—'दृग भरि देखहुँ आजु साधसों प्यारे तुम कहँ ।' तब सुखभोगके समय पूर्व-दुःखका स्मरण जो होता है उसका उदय—'बहुदिन महँ विधि दियो बन्धु तुम सम मनको धन ।' सुख दो तरहका होता है, एक सम्पूर्ण, दूसरा असम्पूर्ण । असम्पूर्ण सुख, जैसे—'मनिमानिक हौ नहीं, गरेको हार करहुँ जो । कुसुम नहीं हौ, करि सिंगार मैं सीस धरहुँ जो ।' इसके बाद सम्पूर्ण सुख, जैसे—'हे गुणनिधि ! विधि कियो मोहि नहिं नारी सुन्दर तुम्हैं साथ ले देश देशमहँ फिरतिउँ भू पर ।'

असह्य सुखका सम्पूर्ण लक्षण है शरीरकी चञ्चलता और मनकी अस्थिरता। यह सुख कहाँ रक्खूँ, लेकर क्या करूँ, मैं कहाँ जाऊँ, यह सुखका बोझा लेकर कहाँ उतारूँ? इस सुखका बोझा लेकर मैं देश देशमें फिरूँगा; यह सुख एक स्थानमें नहीं आसकता; जहाँ जहाँ पृथ्वीमें स्थान है वहाँ वहाँ इस सुखको लेकर जाऊँगा। इस जगत् संसारको इस सुखसे भर दूँगा। संसारको इस सुखके सागरमें तैराऊँगा; एक मेरुसे दूसरे मेरु तक सुखकी तरँगें नचाऊँगा, आप गोते लगाकर उतराकर गिरकर पड़कर उठकर इसीमें दौड़ूँगा। परन्तु, इस सुखमें चिदानन्दका अधिकार नहीं है—इस सुखमें हिन्दूमात्रका अधिकार नहीं है। इस सुखमें क्या, सुखकी चर्चामात्रमें हिन्दुओंका अधिकार नहीं है। गोपियोंको दुःख था कि विधाताने उन्हें स्त्री क्यों बनाया—हमें दुःख है कि विधाताने हमें स्त्री क्यों न बनाया—अगर ऐसा होता तो यह मुख फिर किसीको दिखाना नहीं पड़ता।

सुखकी चर्चामें हिन्दुओंका अधिकार नहीं है—किन्तु दुखकी बातोंमें है। कातरोक्ति कितनी ही गंभीर, कितनी ही हृदयविदारक क्यों न हो, वह हिन्दुओंकी मर्मोक्ति है।—और कातरोक्ति कहाँ नहीं है? तुरतके पैदा हुए पक्षीके बच्चेसे लेकर महादेवके 'सिंगीनाद' तक सभी कातरोक्ति है। जिसको सब सुख प्राप्त है वह सुखी भी सुखके समय पहलेके दुःखोंकी याद करके कातरोक्ति करता है। अगर ऐसा न हो तो सुखकी सम्पूर्णता ही क्या हुई? दुःखकी यादके बिना सुखमें भी सम्पूर्णता नहीं है। सुख भी दुःखमय है—

'आवति हैं जब यादि बन्धुवर मोहि तुम्हारी ।
वृन्दावनकी ओर लखहुँ, सब सुरत बिसारी ॥
बिखरे बारन बाँधि, रसोईघर महँ सोवहुँ ।
तुव गुन गावहुँ बन्धु, धुआँको मिस करि रोवहुँ ॥'

यह उक्ति सुख और दुःखके बीचकी सीमा-रेखा है । जिसके पिछले सुखकी याद होने पर उस सुखके चिह्न अब भी देख पड़ते हैं, वह इस समय भी सुखी है—उसका सुख एकदम जड़मूलसे नष्ट नहीं हुआ । उसके बन्धु, उसके प्यारे, उसके इष्टमित्र—चले गये हैं, किन्तु उसका वृन्दावन बना है - वह चाहे तो अपने उस सुखकी भूमि वृन्दावनकी ओर देख सकता है । हाँ, जिसका सुख गया है—सुखका चिह्न भी नहीं रहा—बंधु चले गये हैं, वृन्दावन भी नहीं रहा, आँख उठाकर देखनेको जगह नहीं है—वही दुखिया है, अनन्त दुखसे दुखिया है । वह वैसा ही दुखी है, जैसे विधवा स्त्री अपने पतिकी पादुका खोजाने पर दुखी होती है ।

मेरे इस भारतके सुखकी स्मृति है, मगर चिह्न कहाँ है? विक्रम भोज, कालिदास, भवभूति, चन्द्रगुप्त, अशोक, शंकर, बुद्ध, दिल्ली, कन्नौज, चित्तौर आदिकी स्मृति है; मगर चिह्न कहाँ है? सुखकी याद आई, परन्तु देखूँ किस तरफ? वह दिल्ली कहाँ है? वह कन्नौज कहाँ है? वह चित्तौर कहाँ है? वह दिल्ली—वह कन्नौज—वह चित्तौर- इस समय भग्नावशेषमात्र रह गये हैं । आर्यराजधानी इन्द्रप्रस्थका चिह्न कहाँ है? आर्योंका इतिहास कहाँ है? जीवनचरित

कहाँ है? कीर्ति कहाँ है? कीर्तिस्तम्भ कहाँ है? समरभूमि कहाँ है? सुख गया—सुखके चिह्न भी गये, बंधु गये, वृन्दावन भी गया, देखूँ किस तरफ?

देखनेके लिए एक श्मशानभूमि है,—इन्द्रप्रस्थ। वहीं पर अधिकार करके यवनोंने भारतमाता पर अपना सिक्का चलाया था। भारतमाताकी याद आने पर मैं उसी श्मशानभूमिकी तरफ देखता हूँ। जब देखता हूँ कि उस राजधानीको घेरकर आज भी यमुना कलनाद करती हुई बह रही है, तब यमुनाको पुकार कर पूछता हूँ—"तुम हो, मगर वह राजलक्ष्मी कहाँ है? तुम जिसके पैर धोती थीं, वह माता कहाँ है? तुम जिसको घेर घेर कर नाचती थीं वह आनन्दमयी कहाँ है? तुम जिसके लिए विदेशोंसे धन लादकर लाती थीं वह रत्नगर्भा कहाँ है? तुम जिसके रूपकी छायासे शोभा पाती थीं वह अनन्तसौन्दर्यशालिनी त्रिभुवनसुन्दरी कहाँ है? तुम जिसकी प्रसादी फूल पाकर इस स्वच्छ हृदयमें माला पहनती थीं वह पुष्पाभरणा कहाँ है? उस रूपको—उस ऐश्वर्यको तुम कहाँ बहा ले गईं? विश्वासघातिनी, तुम क्यों फिर इस श्रवणमधुर कल-नादसे मन बहलानेकी चेष्टा कर रही हो? मैं समझता हूँ तुम्हारे ही गंभीर गर्भमें वह राजलक्ष्मी यवनोंके भयसे डूब गई है, और शायद वह हम कुपुत्रोंका मुख नहीं देखना चाहती, इसीसे डूबी हुई है। मन-ही-मन मैं उसी राजलक्ष्मीके डूबनेके दिनकी कल्पना करके रोता हूँ। मुझे स्पष्ट देख पड़ता है कि चमचमाते हुए बर्छों-को ऊँचा किये यवनोंकी सेना दिल्लीमें आ रही है। समय आया

देखकर दिल्लीसे भारतकी राजलक्ष्मी निकली जा रही है। सहसा आकाशमें अन्धकार छागया; राजमहलका शिखर फट पड़ा। पथिकने भयभीत होकर रास्ता छोड़ दिया; सधवाओंके अंगसे अलंकार गिर पड़े; कुञ्जोंमें पक्षी चुप हो रहे; घरमें पलाऊ मोरोंका शब्द कण्ठका कण्ठमें ही रह गया। दिनको रात हो गई, बाजारके दीपक बुझ गये, मंदिरमें बजानेके समय शंख नहीं बजा, पण्डितने अशुद्ध मन्त्र पढ़ा, सिंहासन परसे शालग्रामकी शिला लुढ़क पड़ी। सहसा जवानोंके शरीरसे शक्ति निकल गई, जवान स्त्री वैधव्यके भयसे रो उठी, बालक बिना किसी रोगके माकी गोदमें पड़ा पड़ा मर गया। बहुत ही गाढ़ा घना घना अन्धकार हर तरफ छागया। आकाश, अटारी, राजधानी, राजमहल, सड़कें, देवमन्दिर, बाज़ार हाट, सब कुछ उसी अन्धकारमें ढक गया—कुंजके किनारेकी भूमि, नदीका बालुकामय किनारा, नदीकी लहरें, सब कुछ उसी अन्धकारमें अस्पष्ट होते होते लीन हो गया। मैं इस समय भी अपनी आँखोंके आगे सब देख रहा हूँ—आकाशमें मेघ घिर आये हैं, वह राजलक्ष्मी सीढ़ियाँ उतरकर जलमें उतर रही है। अन्धकारमें बुझते हुए प्रकाश-बिन्दुकी तरह, जलमें क्रमशः वह तेजकी राशि लीन हो रही है। अगर यमुनाके अथाह जलमें नहीं डूबी तो मेरे देशकी राजलक्ष्मी गई कहाँ ?

बिलाव।

मैं अपने सोनेकी कोठरीमें चारपाई पर बैठा हुआ, हुक्का हाथमें लिये ऊँघ रहा था। एक छोटा सा मिट्टीका दिया टिमटिमा रहा था। दीवार पर चंचल छाया प्रेतकी तरह नाच रही थी। भोजन अभी तैयार नहीं हुआ था, इसीसे मैं हुक्का हाथमें लिये आँखें बंद किये सोच रहा था कि अगर मैं नेपोलियन बोनापार्ट होता तो वाटर्लूके संग्राममें विजय प्राप्त कर सकता या नहीं? इसी समय एक छोटा सा शब्द हुआ--'म्याऊँ।'

आँखें खोलकर देखा—एकाएक कुछ समझमें नहीं आया। पहले जान पड़ा, डयूक आफ़ वेलिंगटन * एकाएक बिलाव होकर मुझसे दूधिया भंग माँगने आया है। मैंने पहले तो पत्थरकी तरह कठिन होकर यों कहनेका विचार किया कि डयूक महाशय, आपको पहले ही उचित पुरस्कार दिया जा चुका है; अब और पुरस्कार नहीं दिया जा सकता। इसके सिवा अधिक लोभ करना अच्छा नहीं। इतनेमें डयूक बोला—'म्याऊँ।'

तब मैंने अच्छी तरह आँखें फाड़कर देखा। देखा, वेलिंगटन नहीं एक छोटा सा बिलाव है। श्यामा ग्वालिन मेरे लिए जो दूध रख गई थी, उसे आप चुपचाप चाट गये हैं। मैं उस समय वाटर्लूके मैदानमें व्यूह-रचना (सेनाकी मोर्चेबंदी) करनेमें लगा हुआ था,

---

* अँगरेज सेनापति, जिसने वाटर्लूके युद्धमें नेपोलियनको हराया था।

कुछ देखा नहीं । अब इस समय बिलावराम मलाईदार दूधकी तरावटसे तृप्त होकर अपने मनका आनन्द इस जगतमें प्रकट करनेके लिए अत्यन्त मधुर स्वरसे कह रहे हैं—' म्याऊँ । ' मैं शब्दशास्त्रके प्रमाणसे सिद्ध तो नहीं कर सकता, परन्तु मुझे जान पड़ा कि उसके इस ' म्याऊँ ' शब्दमें व्यंग्य अवश्य है । शायद बिलाव मन-ही-मन हँसता हुआ मेरी तरफ देखकर कहता था कि कोई जोड़े और कोई खाय । अथवा वह मेरा इरादा जाननेके लिए म्याऊँ—म्याऊँ कर रहा था । जान पड़ता है, वह यह कहता था कि ' तुम्हारा दूध तो मैं पीगया—अब क्या कहते हो ? '

कहूँ क्या ? मैं तो कुछ निश्चय नहीं कर सका । दूध मेरे बापका नहीं था । दूध था मंगला गऊका और उसे दुहा था श्यामा ग्वालिनने । बस, उस दूध पर जैसे मेरा अधिकार है वैसे ही बिलावका भी । इसी कारण मैं उसपर क्रोध नहीं कर सकता । तथापि बहुत दिनोंसे एक प्रथा चली आती है कि बिल्ली दूध पी जाय तो लोग उसे मारने दौड़ते हैं । चिरकालसे चली आई इस चालको न मानकर मैं मनुष्यकुलमें कलंक भी बनना नहीं चाहता । क्या जानें, यह बिलाव अपनी मण्डलीमें जाकर चिदानन्दचतुर्वेदीको कायर कहने लगे; इस कारण मर्दोंके योग्य काम ही करना चाहिए । यह निश्चय कर, हाथसे हुक्का रख, बहुत खोजने पर पाईहुई एक टूटी लकड़ी ले, गर्वके साथ मैं उस बिलावको मारने झपटा ।

बिलाव चिदानन्दको पहचानता था; लकड़ी देखकर वह कुछ विशेष भयभीत नहीं हुआ । केवल मेरी ओर देखकर एक जमुहाई

लेकर जरा हट बैठा । बिलावने फिर कहा—‘ म्याऊँ । ’ उस समय भंगभगवतीकी कृपासे मुझे दिव्य कान मिल गये। तब बिलावका प्रश्न समझ कर लकड़ी रखकर हुक्का हाथमें ले मैं फिर पलंग पर आकर लेट रहा ।

बिलाव कह रहा था कि “ मारपीट क्यों करते हो ? जरा स्थिर होकर हुक्का पीते–पीते विचार तो करो । संसारके सब रस, दूध, दही, मक्खन, मलाई, मोहनभोग, मांस, मछली आदिक पदार्थ क्या तुम्हारे ही लिए हैं ? क्या हमारा उनपर कुछ भी अधिकार नहीं है ? तुम मनुष्य हो, हम बिलाव हैं; पर हममें तुममें अन्तर क्या है ? तुम्हारे भूख प्यास है–हमारे भी है। तुम खाते हो, हम कोई आपत्ति नहीं करते। तो फिर हमारे कुछ खा-पी लेने पर तुम किस शास्त्रके अनुसार लाठी लेकर मारने दौड़ते हो ? तुमको हम लोगोंसे कुछ उपदेश ग्रहण करना चाहिए । मेरी समझमें विज्ञ चौपायोंसे सीखे बिना तुम्हारा ज्ञान बढ़ नहीं सकता। तुम्हारे विद्यालयोंको देखनेसे जान पड़ता है कि इतने दिनोंके बाद तुम मेरे इस सिद्धान्तको मानने लगे हो ।

“ देखो पलँग पर लेटनेवाले आदमी, धर्म क्या है ? परोपकार करना ही परम धर्म है। यह दूध पीनेसे मेरा परम उपकार हुआ है। तुम्हारे दूधसे यह परोपकार हुआ—अतएव तुम इस परमधर्मके भागी हुए। मैंने चोरी की या जो चाहे किया, किन्तु तुमको स्मरण रहे कि मैं ही तुम्हारे इस धर्मसंचयका मूलकारण हूँ। इस लिए

मुझे मारनेका इरादा छोड़कर तुमको मेरी बड़ाई करनी चाहिए ; मैं तुम्हारे धर्मका सहायक हूँ ।

" देखो, मैं चोर हूँ सही, किन्तु सोचो तो, मैं क्या शौकसे चोरी करता हूँ ? खानेको मिले तो कौन चोरी करेगा ? देखो, जो बड़े भारी साधु-सज्जन ईमानदार समझे जाते हैं, जो चोरके नामसे काँप उठते हैं, वे चोरोंसे भी बढ़कर अधार्मिक हैं । उन्हें चोरी करनेकी जरूरत नहीं, इसीसे वे चोरी नहीं करते । किन्तु उनके पास आवश्यकतासे अधिक धन होने पर भी वे चोरकी तरफ आँख उठाकर नहीं देखते । इसीसे चोर चोरी करता है । अधर्म चोर नहीं करता, चोर जो चोरी करता है उस अधर्मका भागी धनी—सूम है । चोर दोषी है, चोरको दण्ड होता है; किन्तु चोरीकी जड़ जो कृपण है उसे क्यों नहीं दण्ड दिया जाता ?

"मैं एक दीवारसे दूसरी दीवार पर म्याऊँ—म्याऊँ करता फिरता हूँ; तो भी कोई एक टुकड़ा रोटी मुझे नहीं देता । लोग आगेका बचा हुआ अन्न कुत्तोंको दे देते हैं, नालीमें फेंक देते हैं, मगर हम लोगोंको बुलाकर नहीं देते । तुम्हारा तो पेट भरा है, तुम हमारी भूखका कष्ट कैसे जान सकते हो ? हाय ! गरीबसे सहानुभूति दिखानेमें क्या कुछ तुम्हारा गौरव घट जायगा ? इसमें सन्देह नहीं कि मुझ सरीखे दरिद्रकी व्यथामें व्यथित होना लज्जाकी बात है जो लोग कभी अंधे अपाहिजको मुट्ठी भर अन्न नहीं देते, उन्हें भी यदि कोई राजा या साहूकार—सेठ पर कोई संकट आपड़े तो रात

भर नींद नहीं आती । इस प्रकार पराई व्यथामें व्यथित होनेके लिए सब राजी होंगे । लेकिन मुझ सरीखे साधारण आदमीके दुखमें दुखी—छी !—कौन होगा ?

" देखो, यदि अमुक महामहोपाध्याय या तर्कचूड़ामणि अथवा न्यायालङ्कार तुम्हारा दूध पीजाते तो क्या तुम लाठी लेकर उन्हें भी मारने दौड़ते ? नहीं, उलटे हाथ जोड़कर कहते कि " क्या और थोड़ा सा ले आऊँ ? " फिर प्रभो, मेरे लिए यह लाठी क्यों ? तुम कहोगे कि वे बड़े बड़े पंडित हैं—मान्य हैं । अच्छा, ' पण्डित या मान्य होनेके कारण क्या उनको हमसे अधिक भूख लगती है ? यह बात तो नहीं है । जिसे जरूरत नहीं उसे देनेका मनुष्यजातिको रोग है । गरीब मुफलिसको नहीं कोई देता। जो खानेके लिए आग्रह करनेसे ' नहीं नहीं ' करें उनके लिए तो जबर्दस्ती भोजनका प्रबन्ध करो, और जो भूखसे व्याकुल होकर बिना बुलाये ही तुम्हारा अन्न खा जाय उसे चोर कहकर दण्ड दो !—छी-छी !

" देखो, हमारी दशा देखो, हम घर-घर डगर-डगर, दीवार-दीवार और आँगन-आँगन म्याऊँ म्याऊँ करते और दीन दृष्टिसे चारों तरफ देखते फिरते हैं—कोई हमको रोटीका टुकड़ा नहीं फेक देता । हाँ, अगर कोई बिलाव तुम्हारे यहाँ पलाऊ हो जाता है, तो उसकी चैनसे गुजरने लगती है । वह वैसा ही हृष्टपुष्ट हो जाता है जैसे किसी बुड्ढेके घर रहनेवाला उसकी जवान स्त्रीका भाई, अथवा मूर्ख मोटेमल रईसके पास रहनेवाला शतरञ्ज ताश वगैरहका खिलाड़ी मुसाहिब । उन बिलावोंकी दुम फूल उठती है—शरीरमें रोयें भरे

रहते हैं। उनके रूपकी छटा देखकर बहुत से बिलाव कवि हो पड़ते हैं।

"और हमारी दशा देखो—भोजन न मिलनेके कारण पेट पीठमें लग गया है, हड्डियाँ देख पड़ती हैं, जीभ बाहर निकल रही है, पूँछ गिरी पड़ती है। निरन्तर भूखके मारे पुकारा करते हैं 'म्याऊँ ?' (अर्थात् मैं आऊँ ?) खानेको नहीं मिला--'म्याऊँ ?' भैया, हमारा काला चमड़ा देखकर हमसे घृणा न करो ! इस पृथ्वी-के पदार्थों पर हमारा भी कुछ अधिकार है। खानेको दो, नहीं तो चोरी करेंगे। हमारे काले चमड़े, सूखे मुख, क्षीण और करुणापूर्ण म्याऊँ-म्याऊँ शब्दको सुनकर क्या तुमको दुःख नहीं होता ? दया नहीं आती ? चोरके लिए दण्ड है, तो क्या निर्दयी निठुरके लिए दण्ड नहीं है ? दरिद्र पुरुष यदि अपने लिए आहार जुटावे तो उसके लिए दण्ड है, फिर धनी आदमी कृपणता करे तो उसको दण्ड देनेकी व्यवस्था क्यों नहीं ? तुम चिदानन्द, दूरदर्शी और समझदार हो, क्यों कि भंगभवानीके अनन्य उपासक हो, तुमको भी क्या यह बतलाना पड़ेगा कि रईसोंके दोषसे ही गरीब चोरी करते हैं ? पाँच सौ गरीबोंको वंचित कर उनका भोजन अपने यहाँ बापके मालकी तरह रख लेनेका धनियोंको क्या अधिकर है ? और रईस या धनी ऐसा करता है तो फिर वह भोजन दरिद्रोंको बाँट क्यों नहीं देता ? अगर वह नहीं देता तो दरिद्र लोग जरूर ही उसमेंसे चुराकर खायँगे। क्यों कि भूखों मरनेके लिए इस पृथ्वी-पर कोई नहीं आया।"

बिलावके वाक्य मुझे असह्य हो उठे । मैंने कहा—" ठहरो, ठहरो, बिलाव पण्डित ! तुम्हारी बातें भारी सोशियालिष्टिक (विद्रोही) हैं ! इनसे समाजमें उलट-पलट हो जायगा ! जिसकी जितनी क्षमता है वह उतना धनसञ्चय न कर सकेगा, या चोरोंके उत्पातसे सुखपूर्वक उसका उपभोग न कर सकेगा, तो फिर कोई धनसञ्चयकी चेष्टा ही न करेगा । और इससे समाजकी आर्थिक उन्नतिमें या धनवृद्धिमें बाधा पड़ेगी । "

बिलावने कहा—" आर्थिक उन्नति या धनवृद्धि न होगी तो हमको क्या ? समाजकी धनवृद्धिका अर्थ हुआ धनीके धनकी वृद्धि । अच्छा, धनीका धन नहीं बढ़ा तो उससे दरिद्रकी क्या हानि हुई?"

मैंने समझाकर कहा—" सामाजिक धनवृद्धिके सिवा समाजकी उन्नति नहीं हो सकती । "

बिलावने क्रोध करके कहा—" मुझे अगर खानेको न मिले तो फिर मैं तुम्हारी समाजकी उन्नति लेकर क्या करूँगा ? "

बिलावको समझाना कठिन होगया । जो विचारक या नैयायिक होता है उसको कभी, कोई भी, कुछ भी नहीं समझा सकता । यह बिलाव विचारक तो है ही, तार्किक भी बड़ा प्रबल है । इसीसे उसे मेरी बात न समझनेका अधिकार है । तब मैंने क्रोध न करके कहा —" हो सकता है कि समाजकी उन्नतिमें गरीबका कुछ स्वार्थ न हो, लेकिन धनियोंका तो उसमें विशेष स्वार्थ है । अतएव चोरको दण्ड देना कर्तव्य है । "

तब फिर बिलावरामने कहा—" आप चोरको फाँसी दीजिए, इसमें भी हमको आपत्ति नहीं; किन्तु उसके साथ ही एक और नियम बनाइए। अर्थात् जो विचारक चोरको सजा दे वह पहले तीन दिन तक भूखा रहे। इस पर अगर विचारकको चोरी करके खानेकी इच्छा न हो तो वह खुशीसे चोरको फाँसी पर चढ़वा दे। तुमने मुझे मारनेके लिए लाठी तानी थी, तुम आजसे तीन दिन तक लंघन करो। इन तीन दिनोंमें अगर तुम रसिकबाबूकी रसोईमें न पकड़े जाओ तो मुझे जी भरके मार लेना; मैं चूँ नहीं करूँगा। "

चतुर लोगोंकी राय यह है कि यदि विचारमें हार जाय तो गंभीर भावसे उपदेश करने लग जाना चाहिए। मैं इसी प्रथाके अनुसार कहने लगा—" देखो बिलाव, तुम्हारी ये बातें बिल्कुल नीतिविरुद्ध हैं; इनकी चर्चा करनेमें भी पाप है। तुम इन सब संसारकी चिन्ताओंको छोड़ कर धर्म-कर्ममें मन लगाओ। तुम अगर चाहो तो मैं तुमको ' न्यूमेन ' और ' पार्कर ' के ग्रन्थ दे सकता हूँ। और चिदानन्द चतुर्वेदीका चिट्ठा पढ़नेसे भी तुम्हारा बहुत कुछ उपकार हो सकता है। और कुछ हो या न हो, भंग-भवानीकी असीम महिमा अच्छी तरह तुम्हारी समझमें आजायगी। अब तुम अपने भवनको सिधारो। श्यामा ग्वालिनने कल कुछ ' खोया ' देनेके लिए कहा है। सबेरे जलपानके समय आना। हम तुम दोनोंका साझा रहा। आज किसीकी हाँड़ी न चाटना। अगर बहुत भूख लगे तो फिर आजाना, थोड़ीसी भंगकी गोली दे दूँगा। "

बिलावने कहा—“ भंगकी मुझे जरूरत नहीं । रही हाँड़ी पर हाथ सफा करनेकी बात, सो इसका विचार भूख लगने पर उसीके अनुसार किया जायगा ।”

बिलाव बिदा हो गया । उस समय यह सोचकर मुझे बड़ा ही आनन्द हुआ कि आज मैं एक पतित आत्माको अन्धकारसे प्रकाशमें ले आया ।

ढेंकी ।

मैं क्या सोचता हूँ ? यही सोचता हूँ कि अगर पृथ्वी पर ढेंकी न होती, तो मैं खाता क्या ? चिड़ियोंकी तरह खलिहानमें बैठकर धान खाता ? या, कान और पूँछ हिलाकर गजेन्द्रगामिनी गऊकी तरह मड़ाईमें मुँह डालता ? निश्चय, यह तो मैं न कर सकता—नौजवान काला काला नंगा धड़गा किसान आकर मेरी पसलियोंमें डंडा मारता और मैं दुम दबाकर सींग हिलाकर जान बचाकर चट पट वहाँसे भागता । किन्तु आर्य-सभ्यताकी अनन्त महिमाके कारण यह भय नहीं है—ढेंकी है—धान कूटकर चावल होते हैं । मैं इस परोपकारनिरत ढेंकीको आर्यसभ्यताका एक विशेष फल समझता हूँ । इसके आगे आर्योंके साहित्य और दर्शनको मैं कुछ नहीं समझता । रामायण, कुमारसम्भव, पाणिनिका व्याकरण और पतञ्जलिका भाष्य, इनमेंसे कोई भी धानको चावल नहीं कर सकता । ढेंकी ही आर्य-

सभ्यताका मुख उज्ज्वल करनेवाला पुत्र,—श्राद्धका अधिकारी है, नित्य पिण्डदान करता है। क्या जहाँ धान कूटे जाते हैं केवल वहीं ? समाजमें, साहित्यमें, धर्मसंस्कारमें, राजसभामें—कहाँ नहीं ढेंकी आर्यसभ्यताका मुख उज्ज्वल करनेवाला पुत्र—श्राद्धका अधिकारी है ? कहाँ नहीं वह नित्य पिण्डदान करता ? दुःख केवल इतना ही है कि इतनेपर भी आर्यसभ्यताकी मुक्ति नहीं हुई, आज भी वह 'भूत'-रूपसे बनी हुई है। आशा है कोई ढेंकी शीघ्र ही उसकी 'गया' करेगी।

ढेंकीके इस अपरिमित माहात्म्यका कारण खोजनेके लिए मुझे बड़ी उत्सुकता हुई। यह बीसवीं शताब्दी है--वैज्ञानिक समय है--कारणका अनुसन्धान करना ही पड़ता है। ढेंकीमें कहाँसे यह कार्यदक्षता आई ? उसमें यह परोपकारबुद्धि कैसे आई ? इस Public Spirit (सर्वसाधारणके लिए जोश) का कारण क्या है ? हमारे शास्त्र कहते हैं कि 'नावस्तुना वस्तुसिद्धिः।' अ-वस्तुसे वस्तुकी सिद्धि नहीं होती। यह कार्यदक्षता—पब्लिक स्पिरिट बिना कारणके नहीं है ! कारणका पता लगानेके लिए मैं वहाँ गया जहाँ ढेंकीमें धान कुटते थे।

देखा, ढेंकी गढ़ेमें गिरती है। बूँदभर भी मदिरा नहीं पी, तथापि बारबार गढ़ेमें गिरती है, उठती है, फिर गिरती है, दम भरका विश्राम नहीं है। मैंने सोचा कि बार बार गढ़ेमें गिरना ही क्या इसके इतने माहात्म्यका कारण है ? ढेंकीके यह परोपकारबुद्धि क्या गढ़ेमें गिरनेहीसे है ? इसमें इतनी Public Spirit क्या बार बार

गिरने पड़नेहीसे पैदा हुई है ? नहीं, यह कभी हो नहीं सकता। क्यों कि हमारे अमुक रईस भी तो दोवख्ता कलवरियाकी नालीमें पड़े रहते हैं, किन्तु कहाँ, उनमें तो कुछ भी Public Spirit नहीं है। कलवरियाके बाहर तो उनके हाथों कुछ भी परोपकार होता नहीं देख पड़ता। और भी—छिपानेकी क्या जरूरत है?—मैं श्रीचिदानन्द शर्मा खुद एक दिन गढ़ेमें गिर पड़ा था। लेकिन अंगूरी रसके सेवनसे मुझे उस लोककी प्राप्ति नहीं हुई—कारण कुछ और ही था। गोपांगनाकुलकलंकिनी श्यामा ग्वालिनने एक दिन अपनी गऊ मंगलाको खोल दिया। खोलते ही वह पूँछ उठाकर सींग झुकाकर दौड़ी! कह नहीं सकता, क्या सोचकर मंगला दौड़ी; स्त्रीजाति और गोजातिके दिलका हाल कौन बता सकता है? किन्तु मुझको देख पड़ा कि मैं ही उसके दोनों सींगोंका निशाना हूँ। तब मैं कमरमें फेंट कस कर दर्पके साथ सिर पर पैर रखकर सरपट भागा! पीछे पीछे वह घड़े घड़े भरके थनवाली भयानक राक्षसी थी। मैं भी जितना दौड़ता था, वह भी उतना दौड़ती थी। फल यह हुआ कि एक जगह औचट चपेट खाकर, लुढ़कते लुढ़कते लुढ़कते, चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्रोंकी तरह लुढ़कते लुढ़कते लुढ़कते विवर लोकमें एकदम दाखिल हो गया। "बिखरे केशकलाप साँस हू कढ़ैं न मुखसों।" हाय! उस समय मेरे हृदयाकाशमें Public Spirit रूपी पूर्णचन्द्रका उदय क्यों नहीं हुआ? हुआ तो जरूर था। उस समय मैने सिद्धान्त किया कि अगर पृथ्वी पर एक भी गऊ न रहे, और नारियल, ताड़, खजूर आदि

पेड़ोंसे दूध निकला करे तो इस दुग्धपोष्य हिन्दूजातिका विशेष उपकार हो। ये लोग सींगकी चपेटसे बे-खटके होकर दूध पिया करें। उस दिन उस गढ़ेमें गिरनेके कारण मेरी परहितकामना इतनी प्रबल हो उठी कि मैंने दूसरे समय श्यामा ग्वालिनसे कहा— " अयि दधिदुग्धक्षीरनवनीतपरिवेष्टिते गोपकन्ये ! तुम अपनी गऊ भैंसोंको बेच डालो, और खुद भूसी खली खाया करो। तुम खुद बहुतसे दुधमुहोंको पाल सकोगी। मगर किसीको लतियाना नहीं। " इसके जवाबमें श्यामाने झाड़ू उठाई और लाचार मुझे भी उस दिन परहितव्रत त्याग करना पड़ा।

अब आप ही बताइए परहितकामना, देशभक्ति, ' साधारण आत्मा ' अर्थात् Public Spirit और खासकर कार्यदक्षता, ये सब बातें गढ़ेमें गिरनेसे होती हैं या नहीं ? अगर नहीं होतीं, तो ढेंकीके यह कार्यनिपुणता, यह महाबल कहाँसे आया ? मैं इसी कूटतर्ककी मीमांसाके लिए सन्देहके साथ सोच विचार कर रहा था, इसी समय मधुर कंठसे किसीने कहा—" क्यों जी ! मुह बाये क्या सोच रहे हो ? तुमने क्या कभी ढेंकी नहीं देखी ? "

आँख उठाकर देखा, कामिनी और दामिनी दो बहने ढेंकी पर धमाधम उचक रही हैं। अब तक उधर देखनेकी फुर्सत ही नहीं मिली थी। एक अंधा आदमी हाथी देखने गया और वहाँ उसने केवल हाथीकी सूँढ़ ही देख पाई; मैं ढेंकी देखने गया, मगर अब तक केवल ढेंकीकी सूँढ़ देख रहा था। पीछेकी तरफ दो श्रीमतियोंके श्रीचरण ढेंकीकी पीठ पर धमाधम पड़ रहे थे—यह देख-

कर भी नहीं देखा था । देखते ही जैसे किसीने मेरी आँखोंपरका टोप उतार लिया ।

मुझमें दिव्य ज्ञानका उदय हो आया—कार्य-कारण सम्बन्धकी परम्परा मेरी आँखोंके आगे दुपहरियाके प्रखर प्रकाशमें प्रकट हो आई । यही तो ढेंकीका बल है ! यही तो ढेंकीके माहात्म्यका मूल कारण है ! यही रमणीपादपद्म ! धमाधम पादपद्म पीठ पर पड़ा रहा है, और ढेंकी धान कूट कर चावल निकाल रही है ! उठती है, पड़ती है, ढक ढक कच कच करती है, मगर चरणकी चोटसे काम करना ही पड़ता है ! न जाने कितना परोपकार कर डालती है ! हाय ढेंकी ! उन पैरोंमें क्या ऐसा गुण है कि उनको अपनी पीठ पर पाकर तू करोड़ों मनुष्योंको अन्न देती है ? और देवताओंको भोग अलगसे । आओ सुन्दरियोंके श्रीचरणो, तुम अच्छी तरह ढेंकीकी पीठ पर ताण्डव नृत्य करो, मैं कृतज्ञता-पाशमें बँधकर तुमको—हाय ! क्या करूँ ?—डायमण्ड कटकी झाँझें पहनाऊँ !

और भाई ढेंकीवृन्द ! मैं तुम्हारी विद्या बुद्धि सब समझ गया। जब पीठ पर रमणीपादपद्म उर्फ़ औरतोंकी लातें पड़ती हैं, तभी तुम धान कूटते हो—नहीं तो केवल काठ हो—जड़ हो—गढ़ेमें सिर डालकर पूँछ उठा कर पड़े रहते हो । तुम्हारी विद्या है केवल गढ़ेमें पड़ा रहना, तुमको आनन्द है केवल मुँहभर चावल पानेमें, और तुम्हारा पुरस्कार है केवल वे ही रंगीन और कोमल श्रीचरण । और सुन पड़ता है, तुम लोगोंमें एक विशेष गुण है। घरमें रह कर क्या तुम बीच बीचमें ' मगर ' हो जाते हो ? और भाई ढेंकी, और

एक बात पूछता हूँ। सुना है, बीच बीचमें तुम्हें स्वर्गमें भी जाना होता है, सचमुच क्या वहाँ जाकर भी धान कूटने पड़ते हैं ? देवता लोग अमृत पीते हैं, कल्पवृक्ष पर चढ़ते हैं, अप्सराओंके साथ क्रीड़ा करते हैं, मेघकी सवारी पर हवा खाने निकलते हैं, रति और कामदेवके साथ ‘ लुकी-लुकइया ’ खेलते हैं—तुम क्या तब तक केवल ‘घिचिर घिचिर ’ करके धान ही कूटते रहते हो ? धन्य है भाई तुम्हारा साहस !

ढेंकीने कुछ उत्तर न दिया, केवल धान कूटती रही । खफा होकर मैं वहाँसे चला गया । कहाँ ? अपने ‘ आनन्द कुटीर ’ में । आप जानते हैं, आनन्द कुटीर क्या है ? स्वर्गीय रसिक बाबू इस समय धान कूटने चले गये हैं । नन्दो नाइन एक खण्डहर हाता छोड़ कर स्वर्गको सिधार गई है । उसका कोई उत्तराधिकारी उसके वियोगकी व्यथा सहनेके लिए पृथ्वी पर मौजूद नहीं है । उस हातेकी ऐसी हालत है कि और किसीने उस पर नेकनियतीकी नज़र नहीं डाली—लाचार मैंने ही उसमें अपना आनन्दकुटीर बना डाला । वह केवल श्रीचिदानन्दका कुटीर नहीं है, साक्षात् सच्चिदानन्दका मन्दिर है । मैं वहीं चारपाई पर लेट कर भंगका गोला गलेके नीचे उतार गया—एकदम सटसे पेटके भीतर ! तबियत तर हुई । थोड़ी देरके बाद समाधि लगने लगी—आँखें बंद होते ही ज्ञाननेत्र खुल गये । मैंने देखा, यह सारा संसार ढेंकीशाला है । बड़ी बड़ी इमारतें, बैठकखाने, राजमहल, सब ढेंकीशाला हैं—उनमें बड़ी बड़ी ढेंकियाँ गढ़ेमें मुँह डाले खड़ी या पड़ी हुई हैं ।

कहीं ज़मींदाररूपी ढेंकी प्रजाके हृदयपिण्डको गढ़ेमें कूटकर उससे नये निर्ख-रूपी चावल निकाल सुखसे पका कर अन्नभोजन कर रहे हैं । कहीं आईन बनानेवाले ढेंकीरूपसे मिनिट रिपोर्टकी राशिको गढ़ेमें कूटकर उससे निकालते हैं नये नये आईन-कानून । विचारकरूप ढेंकी उन्हीं आईनोंको गढ़ेमें पीस कर निकालते हैं मोहताजी, जेलखाना, धनीके धनका अन्त और भले मानसका प्राणान्त । बाबूरूप ढेंकी बोतलके गढ़ेमें पिताके धनको कूटकर निकालते हैं पिलही और तिल्ली । बाबुओंकी ढेंकियाँ एकादशी आदि व्रतोंके गढ़ेमें सारी आमदनी कूटकर निकालती हैं अनाहार ! सबसे अधिक भयानक यह देख कि लेखकरूप ढेंकी साक्षात् माता सरस्वतीके सिरको छापेके गढ़ेमें कूटकर निकालते हैं स्कूलबुक, उपन्यास और खड़ी बोलीकी हिन्दीकवितायें !

देखते देखते देखा कि—मैं भी एक भारी ढेंकी हूँ—आनन्दकुटीरमें लंबा लंबा लेटा हुआ नशेके गढ़ेमें मनोवेदनारूप धान कूट कर चिट्ठारूपी चावल निकाल रहा हूँ । मन ही-मन मुझे अहंकार हुआ—ऐसे चावल तो और किसीके नहीं निकलते । तब इच्छा हुई कि ये चावल तो मनुष्यलोकके लायक नहीं हैं, मैं स्वर्गमें जाकर धान कूटूँगा । उसी समय मनोरथके रथ पर चढ़ कर स्वर्ग पहुँचा । मनने स्वर्गमें जाकर देवराज पुरन्दरको प्रणाम करके कहा—हे देवन्द्र ! हे पुरन्दर ! मैं श्रीचिदानन्द ढेंकी हूँ—स्वर्गमें धान कूटूँगा ।

इन्द्रने कहा—हर्ज क्या है ? क्या कुछ पुरस्कार भी चाहिए ?

मैंने कहा—उर्वशी मेनका रंभा ।

इन्द्रने कहा—उर्वशी या मेनका नहीं मिलेगी। और तीसरा नाम जो तुमने लिया (रंभा) वह तो मनुष्यलोकमें—कलकत्तेमें ही पैसेकी आठ आठके हिसाबसे मिल सकती है।

मैं बड़ा मुँहफट हूँ,—मैंने कहा—क्या देवताजी केला ? वह तो आजकल मनुष्योंको मिलता ही नहीं—देवोंके ही काम आता है।

सन्तुष्ट होकर इन्द्रने मुझे एक सेर अमृत और एक घंटेके लिए उर्वशीका गाना बख़शिस किया। इतनेमें सचेत होकर मैंने देखा, पास ही एक मटकीमें सेर भर दूध रक्खा हुआ है—और श्यामा खड़ी हुई चिल्ला रही है—नशाख़ोर, बेहया, पेटू इत्यादि इत्यादि। मैंने उर्वशीसे कहा—बाईजी, एक घंटा होगया—अब बन्द करो।

चिदानन्दकी चिट्ठियाँ ।

(नं० १)

क्या लिखूँ ?

पूज्यपाद श्रीयुक्त बंगदर्शन—सम्पादक महोदयके श्रीचरणकमलोंमें ।

मेरा नाम है श्रीचिदानन्द चौबे, मैं पहले श्री—श्री—आनन्दकुटीरमें रहता था । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । मुझसे और आपसे कभी साक्षात् भेंट मुलाकात नहीं हुई, तो भी देखता हूँ कि आपने अपने गुणसे मेरा विशेष परिचय प्राप्त कर लिया है । मैं पहले ही समझता था कि लाला मदारीलाल खुशनबीस एक बेईमान आदमी है । मैं अपना चिट्ठा उसके पास अमानत रखकर तीर्थयात्रा करने चला गया; उसने यह सुअवसर पाकर वह चिट्ठा आपके हाथ बेच डाला । बेचनेकी बात आपने नहीं स्वीकार की, किन्तु मैं जानता हूँ कि लाला मदारीलाल बिना दामके शालिग्रामको तुलसी या महादेवको लोटा भर जल भी अर्पण नहीं करता, तब संभव नहीं कि श्रीचिदानन्दका चिट्ठा उसने आपको मूल्य लिये बिना अर्पण कर दिया हो । इस जालसाज़ीका हाल पहले मुझे नहीं मालूम था । अकस्मात् एक दिन एक जोड़ा जूता ख़रीदनेसे सब हाल मालूम हुआ । जूतेका जोड़ा एक हिन्दी अखबारके टुकड़ेमें बँधा था । देखकर मैंने सोचा—किसका ऐसा सौभाग्य उदय हुआ कि उसकी

रचना श्रीमान् चिदानन्द चौबेके चरणोंके जूतोंको चूम कर धन्य हुई ! मैंने कहा—उसका लेखनी धारण करना सार्थक है ! उसका रातोंका तेल जलाना भी सार्थक हुआ ! किसी मूर्खके द्वारा पढ़ी न जाकर साधुओंके चरणोंके साथ सम्बन्धयुक्त हुई—यह उस रचनाके लिए, विशेषतः लेखकके लिए गौरवकी बात है । यों सोचकर कौतूहलके साथ मैंने पढ़कर देखा कि अखबार कौन है ? ऊपर लिखा था—'वंगदर्शन,' और भीतर लिखा था—'चौबेका चिट्ठा' तब समझा कि यह मेरे ही पूर्वजन्मके संचित पुण्यका फल है !

और भी एक बात जाननेके लिए कौतूहल हुआ । मैंने सोचा वंगदर्शन क्या चीज है ? अपने एक दोस्तसे पूछा—"भाईसाहब, आप बतला सकते हैं, वंगदर्शन क्या चीज है ?" उन्होंने बहुत देर सोचा । फिर सिर उठाकर बोले—"जान पड़ता है, बंगालको देखना ही वंगदर्शन है ।" मैंने उनके पाण्डित्यकी बड़ी बड़ाई की; मगर लाचार एक और दोस्तसे भी पूछना पड़ा । उन्होंने कहा—"शकारके ऊपर जो रेफ है, वह छापेवालेकी गल्तीसे रह गई है । ठीक शब्द है वंगदशन अर्थात् 'बंगालके दाँत' ।" उन्हें एक पाठशाला खोलनेकी सलाह देकर मैंने और एक सुशिक्षित सज्जनसे पूछा, उन्होंने कहा—"इस शब्दका अर्थ है,'पूर्व बंगाल देखनेकी विधि' जिसका अँगरेजीमें तर्जुमा होगा— A Guide to Eastern Bengal." इस तरह अनेक प्रकार अनुसन्धान करने पर अन्तको मालूम हुआ कि वंगदर्शन एक मासिकपत्र है, और उसमें चिदानन्द चौबेका मासिक श्राद्ध हुआ करता है । अब सुन पड़ता है

कि किसी धनुर्द्धरने मेरे चिट्ठेको अपनी रचना कहकर प्रसिद्ध करना आरंभ किया है। और भी न जाने क्या क्या होगा !

अतएव हे बंगदर्शनसम्पादक महोदय ! आपको मालूम होना चाहिए कि मैं श्रीचिदानन्द शर्मा इस जगतमें अभीतक स-शरीर मौजूद हूँ और आप लोगोंकी विशेष आपत्ति होने पर भी अभी और कुछ दिन रहनेकी इच्छा रखता हूँ।

अब यह भी जान लीजिए कि इस समय मैं आपको क्यों पत्र लिखने बैठा हूँ। मेरे रसिकबाबू तो संसारसे कूच कर गये। मुझे भरोसा है कि वे सबके आश्रय-स्वरूप श्रीपादपद्ममें पहुँचे होंगे, किन्तु असलमें उनकी कौन गति हुई—इसकी मुझे रत्तीभर भी खबर नहीं है। केवल इतना ही जानता हूँ कि वे इस लोकमें नहीं हैं। जब कारण नहीं तो कार्य भी नहीं, इसी सरल सिद्धान्तके अनुसार जब रसिक बाबू नहीं तो मेरा भी आश्रय नहीं। आजकल भंगके रंगमें भी गड़बड़ मची हुई है। क्या आप भंगके लिए कुछ बन्दोबस्त कर दे सकते हैं? मालूम नहीं, आपने मेरे चिट्ठेके लिए खुशनबीस महाशयको क्या दिया दिलाया—किन्तु मुझे ६० मन भंग हर महीने भेज दिया कीजिए (मै कुछ अधिक भंग पीता हूँ), मैं एक लेख हर महीने आपको दिया करूँगा। आपका कल्याण हो, अब इसमें कुछ नाहीं-नूहीं न कीजिएगा। किन्तु आपके साथ इस तरह पक्का प्रबन्ध करनेके पहले मैं कुछ बात पूछ लेना चाहता हूँ। इस चिदानन्दी कलमसे फर्माइशके माफिक सब तरहके लेख लिखे जाते हैं—

आपको क्या चाहिए? नाटक-नाविल चाहिए, या पालिटिक्सकी जरूरत है? कुछ ऐतिहासिक खोज परतालका हाल भेजूँ, या संक्षिप्त समालोचना लिखूँ? विज्ञानशास्त्रमें आपकी रुचि है, या भूगोलतत्त्व आपको पसंद है? तात्पर्य यह कि गुरु विषय भेजूँ, या लघु? मेरी रचनाका पुरस्कार आप गजसे नाप कर देंगे या मनसे तौलकर देंगे? अगर आपको गुरु विषय ही पसंद हो तो बतलाइएगा, उसमें कैसा अलङ्कार या चमत्कार रहे? आप कोटेशनको अधिक पसंद करते हैं या फुटनोटको? अगर कोटेशन*या फुटनोटकी ×जरूरत हो तो उन्हें किस भाषासे उद्धृत करूँगा?—यह भी लिख दीजिएगा। यूरोप और एशियाकी सब भाषाओंसे मैंने कोटेशनोंका संग्रह कर रक्खा है। केवल अफ्रिका और अमेरिकाकी कुछ भाषाओंका पता मैंने अभीतक नहीं पाया। लेकिन आप चिन्ता न करें, मैं बहुत शीघ्र उन भाषाओंसे कोटेशन लेनेकी चेष्टा करूँगा।

अगर गुरुविषयकी रचना आपको बहुत ही पसंद हो तो यह भी बताइएगा कि किस तरहके गुरु विषयको आप चाहते हैं? इस बारेमें मैं खुद चाहे कुछ कर सकूँ या न कर सकूँ—मुझे एक सहायक बड़ा भारी मिल गया है। लाला मदारीलाल खुशनबीस महाशयका लड़का, जिसने यूटिलिटी शब्दकी विचित्र व्याख्या की थी, उसे शायद अभी आप भूले न होंगे। वह इस समय पढ़ लिखकर

---

* उद्धरण। × नीचेके स्फुट नोट।

लायक हुआ है। उसने एम. ए. पास करके विद्याकी फाँसी गलेमें डाल ली है। गुरु विषयमें वह पारदर्शी है। क्या स्कूली किताबें चाहिए ? वह 'वर्णप्रकाशिका' से लेकर 'रोमदेशके इतिहास' तक सब लिख सकता है। नेचरल हिस्ट्रीका तो उसने अन्त ही कर डाला है; पुराने 'पेनी मेगजीनसें' अनेक लेखोंका अनुवाद कर रक्खा है। और गोल्डस्मिथके लिखे हुए 'एनीमिटेड् नेचर' का सारांश संग्रह कर रक्खा है। ये चीजें चाहिए क्या ? सबसे बढ़कर गुरुविषय जो पाटीगणित और ज्यामिति है, उसमें भी उसका कम साहस नहीं है। ज्यामिति और त्रिकोणमिति चूल्हेमें जाय, चतुष्कोणमितिमें भी उसका पूरा दखल है!- दैवविद्याके बलसे उसने अपने बापके बनवाये हुए चतुष्कोण तलाबको भी माप डाला है। इस कार्यके लिए लोगोंने उसकी प्रशंसाके पुल बाँध दिये- धन्य धन्य कहने लगे। उसकी ऐतिहासिक—कीर्ति कहाँ तक कहूँ ? उसने चित्तौरके राजा 'अल्फ्रेड दि ग्रेट' का एक जीवनचरित १०–१५ सफेका लिख रक्खा है, और हिन्दीसाहित्यसमालोचनाका एक अनूठा ग्रन्थ महाभारतके आधार पर लिख डाला है। उसमें 'कोम्ट' और 'हर्बर्ट स्पेन्सर' के मतका खण्डन किया गया है और 'डार्विन' साहबकी जो थियरी है कि पृथ्वी 'माध्याकर्षण' के बल पर ठहरी हुई है, इसका भी प्रतिवाद है। इस ग्रन्थमें मालतीमाधव नाटकसे भी ४–५ श्लोक उद्धृत किये गये हैं। इन्हीं कारणोंसे यह एक बड़े भारी गुरुविषयका ग्रन्थ हो गया है। कई हजार वर्षोंसे ऐसा ग्रंथ संसारकी किसी भी भाषामें नहीं लिखा गया, और न

लिखे जानेकी अब आशा है। मुझको निश्चय है कि समालोचनाके समय आप अवश्य इस ग्रंथको हिन्दीमाताके मस्तकका महोज्ज्वल मणि कहनेमें जरा भी न हिचकेंगे।

मैं आशा करता हूँ कि गुरु विपय छोड़कर लघु विषयकी ओर आपकी प्रवृत्ति न होगी। क्योंकि लघु विषय तैयार करनेमें ज़रा कठिनाई है। खुशनबीस-नन्दनने एक नाटकका सामान तो जरूर तैयार कर रक्खा है। उसने नायिकाका नाम चन्द्रकला या शशिरंभा ऐसा ही कुछ रखना निश्चय किया है। प्लाट इतना बना है कि नायिकाके पिता विजयपुरके राजा भीमसिंह हैं और नायक और कोई एक 'सिंह' है। अन्तिम सीनमें शशिरंभा नायककी छातीमें छुरी मार कर आप 'हाय मैं मरी' करके जल मरेगी। किन्तु नाटकका आदि या मध्य कैसा होगा, और 'नाटकोल्लिखित व्यक्तिगण' क्या क्या करेंगे—इसका कुछ अभी ठीक नहीं हुआ। शेषांकके चक्कूमार सीनका कुछ अंश लिखा जा चुका है। मैं कसम खाकर कह सकता हूँ कि जो २० लाइनें लिखी गई हैं, उनमें आठ 'हाय सखी!' और तेरह 'क्या हुआ?' चमचमा रहे हैं। अन्तमें एक गीत भी है—नायिका छुरी हाथमें लिये गाती है। किन्तु दुःखकी बात इतनी ही है कि नाटकके अन्यान्य अंश बिल्कुल कोरे पड़े हैं।

अगर नाविल आप चाहते हों तो भी हम अर्थात् खुशनबीस-कम्पनीके लोग मुँह न मोड़ेंगे। हम लोग उत्तम उपन्यास लिख सकते हैं। मगर हमारी यह इच्छा थी कि वाहियात नाविल न लि-

खकर 'डानक्किक सोट' या 'जिलबा' का परिशिष्ट लिख डालते। दुर्भाग्यवश दोनोंमेंसे एक पुस्तक भी अबतक हम लोगोंने नहीं पढ़ी। फिलहाल मेकाले साहबके 'एसे' का परिशिष्ट लिख देनेसे क्या आपका काम चल सकता है ? वह भी नाविल है।

अगर कविता चाहिए तो व्रजभाषामें या खड़ी बोलीमें ? और तुकदार यां बेतुकी ? स्पष्ट करके लिखिएगा। व्रजभाषामें चाहे बेतुकी कविता ही करा लीजिए मगर खड़ी बोलीमें, उहूँः। हाँ बेतुकी कविता मैं खूब कर सकता हूँ। इस समय खुशनबीस-नन्दनने 'रामसीतायण' नामके महाकाव्यका एक खण्ड बड़े परिश्रमसे लिखा है। यह प्रायः रामायणके ढँगका है, केवल चार नाम बदले हैं। चाहिए ?

और अगर लघु गुरु सब छोड़कर, खुशनवीसी रचना छोड़कर साफ चिदानन्दी ढँग आपको पसंद हो तो वह भी लिखिएगा। मेरा लिखा जो कुछ खाक पत्थर है, उसे भेज दूँगा। मगर उसके बदलेमें मन भर भंग जरूर लूँगा। रत्ती रत्ती तोलकर जाँच लूँगा !–तिल भर भी नहीं छोड़ूँगा !

क्या आप राजी है ? आप राजी हों या न हों, मगर मैं राजी हूँ।

(नं० २)

पालिटिक्स (राजनीति)।

श्रीचरणोंमें,---भंग मिली। बहुतसी भंग आपने भेज दी—श्रीचरणकमलोंमें। आपके श्रीचरणकमलयुगलमें—, और भी थोड़ीसी भंग भेजिएगा।

मगर मालूम नहीं कि श्रीचरणकमलयुगलसे मेरे लिए ऐसी कठिन आज्ञा क्यों निकली? आपने लिखा है कि इस समय लोग आईनके खौफ़से पालिटिक्स बहुत कम लिखते हैं; अगर तुम कुछ पालिटिक्स लिखो तो अच्छा होगा—पत्रके ग्राहक बढ़ जायँगे। क्यों महाशय? मैंने ऐसा कौन अपराध किया है जो पालिटिक्स-रूपी पत्थर मारकर अपना सिर फोड़ लूँ? चिदानन्द एक छोटासा ब्राह्मण है, उसके ऊपर पालिटिक्स लिखनेकी आज्ञा क्यों जारी की गई? चिदानन्द स्वार्थपर आदमी नहीं है। भंगके सिवा जगतमें मेरा और कोई स्वार्थ नहीं है, मेरे ऊपर पालिटिक्सका बोझा आप क्यों लादते हैं? मैं राजा हूँ, या खुशामदी मुसाहब हूँ, या जुआ-चोर हूँ, या फकीर हूँ, या सम्पादक हूँ जो मुझसे आप पालिटिक्स लिखनेको कहते हैं। आपने मेरा चिट्ठा पढ़ा है। उसमें आपने कहाँ मेरी स्थूल बुद्धिका ऐसा चिह्न पाया है जो मुझसे आप पालि-टिक्स लिखनेको कहते हैं? भंगके लिए मैंने जरूर आपकी खुशा-मद की है, लेकिन इससे यह न समझ लीजिएगा कि मैं ऐसा खु-शामदी या खुदगर्ज हो गया हूँ कि पालिटिक्स लिखूँ। धिक्कार

है आपके सम्पादकपदको ! और धिक्कार है आपके भंग देनेको ! आप अभीतक नहीं समझ सके कि श्रीचिदानन्द शर्मा ऊँचे दर्जेके कवि हैं, चिदानन्द छोटा समझके पालिटिशियन (राजनीतिज्ञ) नहीं हैं।

आपकी यह आज्ञा पाकर बहुत ही उदास मनसे एक गिरे वृक्षके ऊपर बैठकर, मैं बंगदर्शनसम्पादककी बुद्धि इसतरह विपरीत क्यों होगई, यहीं सोच रहा था। क्या करूँ ! किसी-न-किसी तरह पावभर भंगका गोला गलेके नीचे उतार गया। सामने कल्लू तेलीका घर है—घरके आँगनमें दो तीन बैल बँधे हुए है—मिट्टीमें गड़ी हुई नाँदमें तेलिनके हाथकी मिलाई हुई खली–चोकरकी सानीको गऊ बैल आँखें मूँदे सुखके साथ खाकर मजेमें पागुर (रोंथ) कर रहे हैं। मेरा चित्त कुछ ठिकाने हुआ—यहाँ तो पालिटिक्स नहीं है। इस नाँदके भीतर सब गऊ बैल पालिटिक्स-विकार-शून्य सच्चा सुख पा रहे हैं—देखकर कुछ सन्तुष्ट हुआ। तब भंगके प्रसादसे प्रसन्नचित्त होकर लोगोंकी इस पालिटिक्स-प्रियताके बारेमें मैं विचारने लगा। मुझे किसी कविका एक छन्द याद पड़ा—

गूँगा चाहे चले जबान, लँगड़ा चाहे चलना खूब।
तुम चाहो होऊँ विद्वान, इच्छा ही तो है,—क्या खूब !

हम लोगोंकी इच्छा है पालिटिक्स, हर हफ्ते हर रोज हम पालिटिक्स चाहते हैं; लेकिन गूँगेकी बोलनेकी कामना, लँगड़ेकी दौड़नेकी अभिलाषा, अन्धेकी चित्रदर्शनलालसा, हिन्दू विधवाकी

स्वामिस्नेहकी आकांक्षा, अथवा मेरे मनमें दुलारी दुलहिनके आदरकी लालसाकी तरह वह केवल हँसी करानेवाली है—सफल होनेकी नहीं। भाई पालिटिक्सवालो ! मैं चिदानन्द चौबे तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ। सिपाहीके सुसराल सम्भव है, लेकिन जिस जातिने आपसकी कलहमें भूलकर गैरोंको अपने देशमें बुलाया और अपने हाथों देशका सत्यानाश किया उसके पालिटिक्सका होना त्रिकालमें संभव नहीं ! " भगवान् भला करें, भूखे हैं भीख दो ! " बस यही उन लोगोंका पालिटिक्स है ! इसके सिवा और पालिटिक्स जिस पेड़में फलता है, उसका बीज इस देशकी मिट्टीमें अंकुरित नहीं हो सकता।

इसी तरह सोच रहा था, इतनेमें देखा, कल्लू तेलीका दस बरसका पोता एक थालीमें भात लाकर बाहर छप्परके नीचे बैठकर खाने लगा। दूसरे एक चितकबरे कुत्तेने यह देखा। देखकर, एक बार खड़े होकर, फिर स्थिर दृष्टिसे ताककर, जीभ निकाल कर वह हाँफने लगा। उज्ज्वल अन्नका ढेर काँसेकी चमचमाती हुई थालीमें फूलकी मालाके समान शोभा पा रहा था। मैंने देखा, कुत्तेका पेट बिल्कुल पीठमें लगा हुआ है। कुत्तेने खड़े खड़े देखभालकर एक बार देह तोड़कर जम्हाई ली।

इसके बाद कुछ सोच समझ कर धीरे धीरे उसने एक एक डग आगे रखना शुरू किया; तेलीतनयके भात-भरे मुखकी तरफ तिरछी दृष्टिसे देखता है और एक पैर फिर आगे बढ़ाता है। एकाएक भंगभवानीके अनुग्रहसे मुझे दिव्य दृष्टि मिल गई—देखा, यही

तो पालिटिक्स है—यही कुत्ता तो पालिटिशियन है ! तब मन लगाकर देखने लगा। कुत्तेने पक्की पोलिटिकिल (राजनैतिक) चाल चलना शुरू किया। कुत्तेने देखा, तेलीका बालक बड़ा भला आदमी है, कुछ नहीं कहता। बस क्या था, कुत्ता उसके पास जाकर पाल्थी मार कर बैठ गया। धीरे धीरे पूँछ हिलाता है और तेलीके बालककी ओर दीन दृष्टिसे देखता हुआ 'हः—हः' करके हाँफता है। उसकी दुबली देह, पतला पेट, कातर दृष्टि और हाँफना देखकर लड़केको दया आ गई। कुत्तेका पोलिटिकल एजिटेशन (राजनैतिक आन्दोलन) सफल हुआ। तेलीके लड़केने मसाला-मिले मांसमेंसे एक हड्डी अच्छी तरह चिचोरकर कुत्तेके आगे फेंक दी। कुत्तेने आग्रहके साथ आनन्दपूर्वक उसे चाबना चाटना लीलना और हजम करना शुरू किया। आनन्दसे उसकी आँखें बंद हो आईं।

जब कुत्ता उस हड्डीका रस अच्छी तरह ले चुका, तब उस सुचतुर पालिटिशियनने सोचा—और एक हड्डी लेनी चाहिए। यों सोचकर वह पालिटिशियन फिर उस लड़केके मुँहकी तरफ उसी दीन भावसे देखने लगा। उसने देखा, वह बालक मनमाना भात इमली—गुड़की चटनीके साथ मिलाकर सपाटेके साथ खा रहा है—कुत्तेकी तरफ देखता ही नहीं। तब कुत्तेने एक Bold move (वीरताका बाना) ग्रहण किया। जाति ही पालिटिशियन ठहरी, फिर ऐसा क्यों न होता ? वह राजनीतिज्ञ साहस पर भरोसा करके और थोड़ा आगे बढ़ बैठा, और एक वार जम्हाई ली। इस पर भी

तेलीके लड़केने आँख उठाकर नहीं देखा। तब कुत्ता धीरे धीरे गुर्राने लगा। शायद वह कहता था कि "हे राजाधिराज तेलीतनय, इस कंगालका पेट अभी नहीं भरा।" गुर्राने पर तेलीके लड़केने आँख उठाकर उसकी तरफ देखा। थालीमें अब कोई हड्डी नहीं थी, उसने एक मुट्ठी भात कुत्तेके आगे फेंक दिया। देवराज पुरन्दर जिस सुखसे नन्दनवनमें बैठकर अमृतपान करते हैं, कार्डिनेल ओल्सी या कार्डिनल जेरेजने जिस सुखसे कार्डिनेलकी टोपी पहनी थी, वह कुत्ता उतने ही सुखसे वह मुट्ठीभर भात खाने लगा।

इसी समय तेलीकी जोरू घरसे निकली। अपने बेटेके पास एक कुत्ता 'भसर भसर' भात खा रहा है यह देखकर, लाल लाल आँखें निकालकर तेलिनने एक भारी ईंट कुत्ते पर खींच मारी। राजनीतिज्ञ कुत्ता चोट खाकर दुम दबाकर तरह तरहकी राग-रागिनियाँ अलापता हुआ फुर्तीके संग भागा।

इसी बीचमें एक और घटना देखी। जब तक कंगाल कुत्ता इधर अपना पेट भरनेके लिए तरह तरहके कौशल कर रहा था तब तक उधर बड़ा भारी साँड़ आकर तेलीके बैलकी नाँदमें मुँह डालकर खली-मिली सानी स्वाद ले लेकर खाने लगा। तेलीका बैल बेचारा कमजोर था, वह उसके भयानक पैने सींग और भारी शरीरको देखकर नाँदसे मुँह हटाकर चुपचाप खड़े होकर कातरदृष्टिसे उसके खानेकी चातुरी देखने लगा। कुत्तेको मारकर तेलिन लौटी—इधर यह लूट देखकर उसने एक लाठी उठाई, और वह बैलको मौतके मुँहमें जानेकी सलाह देते हुए उसकी तरफ झपटी।

किन्तु मौतके मुँह तक जाना तो दूर रहा—साँड़ एक पग भी उस जगहसे नहीं हटा। तेलीकी जोरू जब पास पहुँची तब साँड़ने अपने बड़े बड़े सींग हिलाकर उन्हें उसके पेटमें भोंकनेका इरादा जाहिर किया। तेलिन तब लड़ाईसे भागकर घरमें घुस गई। साँड़ भी नाँदको चाट-पोंछकर मस्तचालसे चल दिया।

मैंने सोचा कि यह भी पालिटिक्स है। दो तरहका पालिटिक्स देखा—एक कुत्तेकी जातिका और दूसरा बैलकी जातिका। 'बिस्मार्क' और 'गर्शकफ' इस बैलकी श्रेणीके पालिटिशियन थे; और 'ओल्सी' से लेकर हमारे परममित्र राजा ढोलकप्रसाद रायबहादुर तक सभी कुत्तेकी श्रेणीके पालिटिशियन हैं।

(नं० ३)

भारतवासियोंका मनुष्यत्व।

सम्पादक महाशय, आपको पत्र क्या लिखूँ—लिखनेमें वाधा डालनेवाले अनेक शत्रु हैं। मैं इस समय जिस झोपड़ेमें रहता हूँ उसके पास ही दुर्भाग्यवश मैंने दो-तीन फूलोंके पेड़ लगा दिये हैं। मैंने सोचा था, चिदानन्दके कोई नहीं है—ये ही फूल मेरे सखा—सखी होंगे। इन्हें खुशामद करके प्रफुल्लित प्रसन्न करनेकी जरूरत नहीं, इनके लिए रुपया लुटानेकी आवश्यकता नहीं, इन्हें गहने न देने पड़ेंगे। इनका मन रखनेके लिए चापलूसीकी बातें न करनी पड़ेंगी। ये अपने सुखसे आप ही खिल उठेंगे। इनमें हँसी है,

रोना नहीं है, प्रसन्नता है, रूठना नहीं है । मैंने समझा था कि
श्यामा ग्वालिनसे और मुझसे बिगाड़ होगया है तो क्या—उसने मुझे
तज दिया है तो क्या, इन फूलोंसे मैं दोस्ती करूँगा ।

सो, फूल भी खिले—वे हँसने भी लगे । मैंने सोचा—सम्पाद
कजी ! मैं सोचने ही कहाँ पाया, फूलोंको खिलते देखकर झुंडके
झुंड भौंरे ममाखी और भिड़ें इत्यादि रसकी खोज करनेवाले रसिक
आकर मेरे द्वार पर डट गये और वे गुनगुन भनभन घेंघें करके
जी जलाने लगे । उनको बहुत कुछ समझाकर मैंने कहा—"सज्जनो
—महाशयो ! यह सभा नहीं, समाज नहीं, एसोसियेशन, लीग, सो-
साइटी, क्लब आदि कुछ भी नहीं—यह चिदानन्दकी झोपड़ी है ।
आप लोगोंको भनभन घें-घें करना हो तो अन्यत्र जाइए । मैं अब
और कोई रिजोल्यूशन (प्रस्ताव) करनेके लिए तैयार नहीं हूँ—
आप लोग दूसरी जगह पधारें । परन्तु गुनगुन भनभन करनेवाला
दल किसी तरह नहीं माना—उलटे वे लोग फूलोंके पेड़ छोड़कर
मेरी झोपड़ीके द्वार पर हल्ला करने लगे । अभी अभी मैंने आपको
पत्र लिखना शुरू किया था (अब भंगका नशा उतर चला है)—
इसी समय एक भौंरा, काजल सा काला असल भौंरा, भनसे उड़कर
आया, और मेरे कानोंके पास भनभन करने लगा । अब बतला-
इए महाशय, आपको पत्र कैसे लिखूँ ?

भ्रमर भैया अपनेको बहुत ही रसिक और अच्छा व्याख्यान-
दाता समझते हैं । उन्होंने समझा कि उनकी भनभनाहटसे मुझे

व मिलेगा, मेरा जी जुड़ा जायगा । मेरे ही फूलोंकी पँखड़ियाँ
ड़कर मेरे ही कानोंके पास भन भन ! क्रोधके मारे मैं अग्निशर्मा
गया—मेरे हाड़ जल उठे । मैं ताड़का पंखा हाथमें ले भौंरेसे भिड़
ा । तब मैं घूर्णन, विघूर्णन संघूर्णन आदि विविध वक्रगतियोंसे
ेका अस्त्र चलाने लगा; भौरा भी डीन, उड्डीन, प्रडीन, समा-
न आदि अनेक पैंतरे बदलकर अपनी फुर्ती दिखाने लगा । मैं
चिदानन्द चौबे चिट्ठारूपी मुक्तावलीका लेखक हूँ, किन्तु हाय रे
ुष्यके पराक्रम ! तू अत्यन्त असार है । तू सदा मनुष्यको धोखा
र अन्तको अपनी असारता प्रमाणित कर देता है । तुने जामाक
ानमें हेनबलको, पलटोवाके मैदानमें चार्ल्सको, वाटर्लूके मैदानमें
ोलियनको और आज इस भ्रमरसमरमें चिदानन्दको खूब ही
खा दिया । मैं जितना ही पंखा घुमाकर, हवा पैदाकर भौंरेको
ाने लगा, उतना ही वह दुष्ट घूम फिर कर सिर पर चढ़कर
भन करने लगा । वह कभी मेरे कपड़ोंमें छिपकर, बादलकी
ड़से मेघनादकी तरह युद्ध करने लगा; और कभी कुंभकर्णसे
ड़नेवाली रामकी सेनाकी तरह मेरी बगलसे निकल कर मुझे खि-
ने लगा । वह कभी शेम्पसनकी तरह मेरे बालोंमें ही मेरा सारा
क्रम संचित समझकर मेरे शरद् ऋतुके बादल सरीखे घुँघराले
तश्याम केशोंमें घुसकर भेरी बजाने लगा । तब काटनेके डरसे
ड़ाकर मुझे युद्ध छोड़ भागना पड़ा । उसने भी पीछा किया ।
ी समय चौखटमें ठोकर खाकर चिदानन्द शर्मा "पपात धरणी-
!!! " इस संसारके संग्राममें महारथी चिदानन्द शर्मा, जो

कभी दारिद्र्य, चिरकौमार और भंग आदिसे भी नहीं परास्त हुए, वे ही हाय ! आज इस साधारण जीवसे हार गये ।

तब शरीरसे धूल झाड़ता हुआ मैं उठ खड़ा हुआ, और हाथ जोड़कर भ्रमरराजसे इस प्रकार क्षमाप्रार्थना करने लगा। मैंने कहा, " हे द्विरेफसत्तम ! इस गरीब ब्राह्मणने तुम्हारा क्या अपराध किया है, जो तुम उसके लिखने-पढ़नेमें बाधा डालने आये हो । देखो, मैं बंगदर्शन-सम्पादकको यह पत्र लिखने बैठा हूँ—पत्र लिखनेसे भंग आवेगी—तुम क्यों भनभन करके उसमें विघ्न डाल रहे हो ? " मैं आज सबेरे एक हिन्दीका नाटक पढ़ रहा था, अकस्मात् उसी नाटकको धुनमें मैंने कहा—" हे भृंग ! हे अनंगरंगकी तरंग बढ़ानेवाले ! हे बागविहारी ! तुम क्यों भनभन कर रहे हो ? हे भृंग ! हे द्विरेफ ! हे षट्पद ! हे अलि ! हे भ्रमर ! हे भौंरे ! हे भनभन !—"

अपने सहस्रनाम-पाठसे प्रसन्न होकर भौंरा मेरे साम्हने आ बैठा । वह गुनगुन करके गला साफ कर कहने लगा—आप जानते ही हैं कि मैं भंगभगवतीकी कृपासे सब प्राणियोंकी बातें समझ सकता हूँ । मैं कान लगा कर सुनने लगा ।

मधुकर बोला—" विप्रदेव ! मेरे ही ऊपर इतना क्रोध क्यों है ? क्या मैं ही अकेला भनभन करता हूँ ? तुम्हारी इस भारतभूमिमें जन्म लेकर भनभन न करूँ तो क्या करूँ ? हिन्दुस्तानी कौन भनभन नहीं करता ? भनभनके सिवा भारतवासियोंको और रोजगार ही क्या है ? तुम लोगोंमें जो लोग राजा महाराजा या आनरेबुल

आदि हैं वे कौंसिलोंमें बैठकर भनभन करते हैं । जो लोग राजा या रायबहादुर होनेके उम्मेदवार हैं वे दिनरात राजदर्बारमें या साहबोंके पास जाकर भनभन करते हैं । जो केवल एक नौकरीके उम्मेदवार हैं उनकी भनभनाहटका तो अन्त ही नहीं है । हिन्दुस्तानी बाबूलोग, जिन्होंने थोड़ी बहुत अँगरेजी सीख ली है, हाथमें दर्ख्वास्त या सिफारिशी चिट्ठी लिये उम्मेदवार बनकर दर्वाजे दर्वाजे भनभन करते फिरते हैं । वे मच्छड़ोंकी तरह खाते पीते, सोते बैठते, चलते फिरते, दिनको, रातको, सबेरे--दोपहर, तीसरे पहर, शामको, हर घड़ी, भनभन करके सताया करते हैं । जो लोग उम्मेदवारी छोड़कर स्वाधीन वकील बैरिस्टर हो गये हैं वे सनद-याफ्ता भनभनानेवाले हैं । वे सच-झूठके सागरसंगममें प्रातःस्नान करके, जहाँ देखते हैं कि कठघरेके भीतर गंजा सिर लिये सर्कारी हौआ--बड़े जज, छोटे जज, सबजज, डिपुटी, मुन्सिफ आदि--बैठे हैं, वहीं जाकर भनभनाहटका फुहारा छोड़ने लगते हैं । कोई लोग भनभनाहटके द्वारा देशका उद्धार करनेके विचारसे सभामें लड़के--बाले और बुड्ढोंको जमाकर भनभन करने लगते हैं । कुछ लोग ऐसे हैं जो किसी देशमें वर्षा न होनेका समाचार पाकर उसीके लिए दस बीस आदमियोंको जमाकर भनभनाने लगते हैं । कुछ ऐसे हैं जो कहते हैं, हम लोगोंको बड़ी बड़ी नोकरियाँ नहीं मिलतीं, आओ भाई, सब मिलकर भनभन करें----अमुक रईसकी मा मर गई है, आओ भाई, उसका स्मारक स्थापित करनेके लिये भनभन करें । कुछ लोग ऐसे हैं जिनको इसमें भी सन्तोष नहीं होता; वे कागज कलम लेकर हर

सप्ताह, हर महीने, हर रोज़ भनभन भनभन करते रहते हैं । और तुम भैया, जो मेरी भनभनाहटसे इतना चिढ़ रहे हो, क्या करने बैठे हो ? तुम भी बंगदर्शनसम्पादकसे भंग पानेकी अभिलाषा करके भनभन करने बैठे हो । तब फिर मेरी ही भनभनाहट क्यों इतनी बुरी लगती है ?

" तुमसे सच कहता हूँ चिदानन्द ! तुम्हारी जातिकी भनभनाहट मुझे भी अच्छी नहीं लगती । मैं एक साधारण कीड़ा हूँ, मैं भी केवल भनभन नहीं करता । हम लोग मधु-संग्रह करते हैं और जथा बाँधते हैं । तुम लोग न मधु-संग्रह करना जानते हो, और न जथा बाँधना जानते हो—जानते हो केवल भनभन करना । तुमको कोई काम करनेका सलीका नहीं; केवल रोनी औरतोंकी तरह दिनरात भनभन कर सकते हो । जरा बकबक करना और लिखना पढ़ना कम करके काममें मन लगाओ—तभी तुम्हारी श्रीवृद्धि हो सकती है । मधु-संग्रह करना सीखो, मधुकर (ममाखी) की तरह एका करके जथा जोड़ना सीखो । तुम्हारी जीभ और कलमसे तो हमारा डंक ही अच्छा है । तुम्हारे वाक्योंसे या कलमसे कोई नहीं डरता, परन्तु देखो, हमारे डंकसे सब लोग घबड़ाते हैं । स्वर्गमें इन्द्रका वज्र है, पृथ्वी पर अँगरेजोंकी तोप है और आकाशमार्गमें हमारा डंक है । अस्तु, प्रयोजन इतना ही है कि मधुसंग्रह करो और काममें मन लगाओ । अगर देखो कि जीभ और हाथोंकी खुजलीके मारे काममें मन लगता ही नहीं तो जीभ काटकर काममें हाथ लगाओ—अवश्य काममें मन लगेगा । "

यों कहकर भ्रमर भैया भनसे उड़ गये। मैंने सोचा, यह भौंरा अवश्य ही बड़ा पंडित है। सुना जाता है कि यदि किसी मनुष्यकी पदवृद्धि हो तो वह होशियार और विज्ञ समझा जाता है। इसी कारण दो-पदवाले मनुष्योंसे चार-पदवाले पशु—अथवा जिन मनुष्योंकी पद-वृद्धि हुई है—उन्हें अधिक विज्ञ समझना चाहिए। इस भौंरेके दो नहीं, चार नहीं, छह पद हैं। अवश्य ही यह बड़ा भारी पण्डित और चतुर है, नहीं तो इसकी ऐसी असामान्य पदवृद्धि कैसे होती? फिर ऐसे पण्डित जीवकी सम्मतिका अनादर कैसे करूँ? अतएव कमसे कम आज मैं अपनी भनभनाहट बंद करता हूँ—परन्तु मधुसंग्रहकी आशा लगी हुई है। बंगदर्शनरूपी पुष्पसे भंगरूपी मधु (शहद) प्राप्त होगा—इसी आशासे प्राण धारण किये हुए हूँ मैं—

आपका आज्ञाकारी,

श्रीचिदानन्द चतुर्वेदी।

(नं० ४)

बुढ़ापेकी बातें।

सम्पादक महाशय! भंग नहीं पहुँची, इधर कई दिन बड़े कष्टसे बीते। आजका यह लेख आँखें फाड़ फाड़ कर मैंने लिखा है; भंगभवानीकी कृपाने नहीं। आज एक अपने मनके दुःखकी बात लिखता हूँ।

मैं बुढ़ापेकी बातें लिखूँगा। लिखूँ-लिखूँ कर रहा हूँ, लेकिन लिख नहीं पाता। हो सकता है कि ये दारुण या करुण बातें मुझे बहुत ही प्यारी लगती हों, क्योंकि अपने सुखदुखकी बातें सबको अच्छी मालूम पड़ती हैं; किन्तु यदि मैं इन बातोंको लिखूँगा तो दूसरा कोई क्यों पढ़ेगा? जवान लोग ही प्रायः लिखते पढ़ते हैं, बूढ़े लोग नहीं। जान पड़ता है, मेरी इन बुढ़ापेकी बातोंको पढ़नेवाला एक भी न निकलेगा।

इसीसे मैं ठीक बुढ़ापेकी बातें नहीं लिखूँगा। वैतरणी (यमलोककी एक भयानक नदी) के किनारे लगे हुए अन्तिम जीवनसोपान पर अभी मैंने पैर नहीं रक्खा। कमसे कम मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि वह दिन अभी दूर है। किन्तु जवानी पर भी अब मेरा कुछ दावा नहीं है, मियाद पूरी हो गई। यद्यपि मियाद पूरी हो गई है, लेकिन बकाया वसूल करना बाकी है। उसके लिए अभी कुछ झगड़ा बना हुआ है। अभी मैं जवानीसे पूरी तौर पर फ़ारख़ती नहीं ले सका। इसके सिवा महाजनका भी कुछ बाकी है; अकालके दिनोंमें बहुत कर्जा लेकर खाया है। अब उस ऋणको चुका सकनेकी न आशा है और न शक्ति है। उस पर, पार पहुँचानेवालेको उतराई देनेके लिए भी कुछ जमा करनेकी जरूरत है। मैं अगर अपने इस दुःखचिन्तापूर्ण समयकी दो चार बातें कहूँ, तो क्या तुम जवानीका सुख छोड़कर एक बार सुनोगे?

पहले असल बातका निर्णय हो जाना चाहिए। अच्छा, क्या मैं बूढ़ा हूँ? मैंने यह प्रश्न केवल अपने ही लिए नहीं उठाया। मैं,

बूढ़ा हूँ या जवान हूँ, दोनोंमेंसे एक बात स्वीकार करनेके लिए तैयार हूँ। किन्तु जिसकी अवस्था ऐसी ही खींचतान की है, जिसकी जवानीका सूर्य ढल चुका है, ऐसे हर आदमीसे मैं यही कहता हूँ कि विचार कर देखिए, क्या आप बूढ़े हैं?

आप, या तो, बाल भौंरेके ऐसे काले घुँघराले—दाँत मोतीकी लड़ीको भी लजानेवाले, और नींद तिबारा ब्याहकर लाई हुई जोरूके जगाने पर भी न खुलनेवाली होने पर भी, बूढ़े हैं। या, बाल गंगाजमुनी, दाँतोंकी लड़ी बीच बीचके एक दो दानोंसे शून्य, और नींद आँखोंके लिए बिडम्बना मात्र होने पर भी, जवान हैं। आप कहेंगे, इसके क्या माने? मै कहता हूँ, इसके माने यही है कि बहुत लोग ऐसे हैं जो ३०—३५ वर्षकी अवस्थामें ही अपनेको बूढ़ा मान लेते हैं और बहुत ऐसे हैं जो ४०—४५ वर्षके होने पर भी अपनेको जवान समझते हैं। जो तीस पैंतीस वर्षकी अवस्थामें बूढ़ा बनना चाहता है वह या तो बूढ़ा बनकर अपनी विज्ञता प्रकट करना चाहताहै और या चिररोगी अथवा किसी बड़े दुःखसे दबा हुआ है। ऐसे ही जो ४०—४५ वर्षकी अवस्थामें अपनेको जवान बतलाना चाहता है उसको या तो यमराजका भारी भय है और या उसने तिबारा किसी षोड़शीसे ब्याह किया है।

किन्तु, जीवनकी इस आधी मंजिल पर पहुँचकर चश्मा हाथमें ले, रूमालसे मत्थेका पसीना पोंछते पोंछते ठीक ठीक बतलाना कठिन है कि "मैं बूढ़ा हुआ या नहीं।" शायद हो गया, अथवा अभी

नहीं हुआ। मन कहता है कि आँखोंसे भले ही साफ न देख पड़ता हो, बाल भले ही एक आध पक गये हों, लेकिन अभी बूढ़ा नहीं हुआ। क्यों? कुछ भी तो पुराना नहीं हुआ। यह पुराना—बहुत पुराना जगत् तो आज भी नवीन ही है। प्यारी कोयलका कुहूकुहू शब्द पुराना नहीं हुआ, गंगाकी ये सुन्दर चंचल चमकीली लहरें पुरानी नहीं हुईं, प्रभात कालकी शीतल मन्द सुगन्ध हवा—बकुल कामिनी चम्पा चमेली जूहीकी सुगंध—वृक्षोंकी श्यामल शोभा—चन्द्रमाकी विमल चाँदनी—कुछ भी पुराना नहीं। सब वैसा ही उज्ज्वल, कोमल, सुन्दर है। केवल मैं ही पुराना होगया? मैं इस बातको नहीं मानता। पृथ्वी पर तो इस समय भी वैसे ही हँसीका फुहारा छूट रहा है। केवल मेरे ही हँसनेके दिन चले गये? पृथ्वी पर उत्साह, क्रीडाकेलि, रंगतमाशा आज भी वैसे ही भरा पड़ा है। केवल मेरे ही लिए नहीं है? जगत् प्रकाशपूर्ण है। केवल मेरे ही लिए अन्धकारमयी अमाकी निशा आगई? सालोमन कम्पनीकी दूकान पर वज्रपात हो, मैं यह चश्मा तोड़ डालूँगा। मैं बूढ़ा नहीं हुआ।

मगर कठिनता तो यह है कि मैं मानूँ या न मानूँ, लेकिन बुढ़ापा नहीं मानता। वह चला ही आता है। मैं लाख दूर भागूँ—पर वह पीछा नहीं छोड़नेका। धीरे धीरे पल पल आयु क्षीण होती जाती है। जवानीवाला किनारा दूर होता जा रहा है। मैं लाख कहूँ कि बूढ़ा नहीं हुआ, लेकिन 'मैं बूढ़ा हो चला'—इसका अनुभव मुझे रह घड़ी होता जाता है। लोग हँसते है, मैं केवल उनका

मन रखनेके लिए हँसीकी नकल कर देता हूँ । लोग गाते बजाते हैं, मैं केवल यह दिखानेके लिए कि मैं अभीतक बूढ़ा नहीं हुआ—मुझमें जवानीका उल्लास वैसा ही है, उनकी मण्डलीमें शामिल होता हूँ । लेकिन सच पूछो तो हँसने बोलने या गाने बजानेके लिए हृदय नहीं हुलसता । मेरे लेखे उत्साह है ही नहीं । आशा, मेरी समझमें अपने आत्माको धोखा देना है । कहाँ, मुझमें तो उत्साह या आशा—भरोसा कुछ भी नहीं है । जो है नहीं, उसे खोजनेकी भी कोई जरूरत नहीं ।

खोजनेसे क्या मिलेगा? जो फूलोंकी माला इस जीवनवाटिकाको सुगंधित और सुशोभित करती थी, उसके सब फूल एक एक करके झड़ गये । जो सदा प्रफुल्लित मुखकमल मुझे बहुत प्यारे लगते थे, उनमें बहुतसे अदृश्य हो चुके, और बहुतसे अब भी घाममें मुरझाये हुए तीसरे पहरके फूलकी तरह देख पड़ते हैं; उनमें वह रस नहीं है । इस टूटेफूटे भवनमें, इस निरानन्द बंद नाट्यशालामें, इस उजड़ी हुई महफिलमें वह उज्ज्वल दीपमाला कहाँ है? एक एक करके सब प्रकाश बुझ गये । केवल मुख ही नहीं, वह सरल स्नेहपूर्ण—विश्वासमें दृढ़—सौहार्दमें स्थिर—अपराध करने पर भी प्रसन्न बंधुहृदय कहाँ है? नहीं है । किसके दोषसे नहीं है? इसमें मेरा दोष नहीं, बन्धुओंका भी दोष नहीं, दोष है अवस्थाका अथवा यमराजका ।

तो इसमें हानि क्या है? अकेला आया था, अकेला ही जाऊँगा । इसकी चिन्ता क्या है? इस अनंतजीवपरिपूर्ण संसारसे

मेरी नहीं बनी, अच्छा, बिदा । पृथ्वी, तू अपने नियमित मार्ग (कक्षा) में घूमती रह, मैं भी अपने मनकी जगह जाता हूँ। तेरा मेरा नाता छूटा, तो इससे तेरी हानि क्या है ? और मेरी ही क्या हानि है ? तू अनन्त काल तक यों ही शून्य-पथमें घूमा करेगी। और मैं, मैं भी कुछ ही दिनोंका मेहमान हूँ—फिर, जिसके पास परम शान्ति मिलती है, स` ज्वालायें मिट जाती हैं, उसीके पास, तुझे चक्करमें छोड़ कर चल दूँगा।

अच्छा, तो इससे यह निश्चय हुआ कि एक तरहसे मैं बूढ़ा हो चला। अब मुझे क्या करना चाहिए ? किसी ना-समझने लिख दिया है कि पचासके बाद वनमें चले जाना चाहिए—' पञ्चाशोर्ध्वं वनं व्रजेत् । ' वन और कहाँ है ? मेरे लिए तो बस्ती ही वन है। आप सच मानिएगा—इस अवस्थामें सब भोगविलासकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण बड़े बड़े महलोंकी शोभा और आदमियोंकी चहलपहलसे नाजवानोंको खुश करनेवाली नगरी ही जंगल है। हे नवयुवक पाठकगण, तुम्हारे हृदय और मेरे हृदयसे बिलकुल मेल नहीं है। खास कर तुम्हारा ही हृदय मेरे हृदयसे नहीं मिलता। ईश्वर न करे कोई आपत्ति आपड़े तो उस समय शायद तुममेंसे कोई पूछने भी आवे कि " ए बूढ़े, तूने बहुत देखा सुना है । बता, इस विपत्तिमें मैं क्या करूँ ? " लेकिन अमन चैनके समय कोई नहीं कहेगा कि " ए बूढ़े, आज हमारे खुशीका दिन है, आ, तू भी आनन्द मना। " बल्कि ऐसे जल्से तमाशेमें इस बातकी कोशिश की जा

यगी कि बूढ़े खूसटको खबर न होने पावे । तो बताओ, जंगलमें बाकी क्या है ?

हे प्रौढ़ पाठकगण, जहाँ तुम पहले स्नेहकी प्रत्याशा करते थे वहीं तुम इस समय भय या भक्तिके पात्र हो । जो पुत्र, तुम्हारी जवानीके समय, अपने लड़कपनमें, तुम्हारे पास पलंग पर पड़ा हुआ सोते सोते छोटे-छोटे हाथ फैलाकर तुमको खोजने लग जाता था, वह इस समय तुमसे मिलता भी नहीं, और लोगोंके द्वारा खबर लेता है कि पिताजी कैसे हैं ? जिस पराये लड़केकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर तुमने उसको गोदमें लेकर आदर किया था, मुख चूमा था, वही आज जवान है । वह इस समय या तो महापापी है—अपने कुकर्मोंसे पृथ्वीका भार बढ़ा रहा है—पापके सागरमें आकण्ठ निमग्न है, अथवा तुम्हारा ही शत्रु बन बैठा है। तुम क्या करते हो? केवल रोकर कह सकते हो कि इसे मैंने अपनी गोदमें खिलाया है। तुमने जिसे गोदमें बिठाकर ' क—ख ' सिखलाया है वही इस समय लब्धप्रतिष्ठ लेखक और पण्डित है, और तुम्हींको मूर्ख कहकर मन-ही-मन हँसता है । जिसको किसी समय तुम कुछ न समझते थे वही इस समय तुमको कुछ नहीं समझता । तो बताओ, अब जंगलमें बाकी क्या है ?

भीतरी बातें छोड़कर बाहर देखिए, वहाँ भी ऐसा ही दीख पड़ेगा । जहाँ तुमने अपने हाथसे फूलबाग लगाया था, चुन-चुन कर गुलाब बेला, चमेली, जूही आदिके पेड़ लगाये थे, घड़ा लेकर अपने हाथों पानी सींचा था वहीं देखोगे कि चने मटरकी खेती हो

रही है। कल्लू किसान बैलोंको हाँकता हुआ मजेमें गागाकर हल चला रहा है—उस हलकी नोंक मानो तुम्हारे हृदयमें घुसी जाती है। जो मकान तुमने जवानीमें तरह तरहकी अभिलाषायें करके बड़े यत्नसे बैठकर बनवाया था, जिसमें पलंग बिछा कर, उस पर अपनी धर्मपत्नीके साथ नयनसे नयन और अधरसे अधर मिलाकर, इस जीवनमें कभी न मिटनेवाले प्रेमकी बातें पहलेपहल की थीं, देखोगे, उसी घरकी ईंटें किसी रईसके अस्तबलकी सुखी तोड़नेके लिए गधोंपर लदी चली जा रही हैं। उस तुम्हारे यौवन-लीला-निकेतन पलँगकी 'पट्टी' और 'पाये' चूल्हेमें जलाये जा रहे हैं। तो बताओ, अब जंगलमें क्या बाकी रहा?

सबसे बढ़कर जलनकी बात यह है कि तुमने या मैंने उस जवानीके समय जिसे सुन्दर परमसुन्दर देखा था वही अब बुरा (कुरूप) है। मेरे प्यारे मित्र बाबू आनन्दकन्द बड़े ठाटके साथ जब जवानीमें मस्त हो रूपके घमण्डमें ऐंठे फिरते थे तब (उन्हींके कथनानुसार) न जाने कितनी रसिक रमणियाँ गंगातट पर उन्हें देखकर शिव पर जल चढ़ाते समय 'नमः सिवाय' की जगह 'आनन्दकन्दाय नमः' कह बैठती थीं। इस समय उन्हीं आनन्दकन्दका हाल क्या है?—जानते हो? वह रूपका बाजार लुट गया है, वे बड़ी बड़ी आँखें बैठ गई हैं, बाल पक गये हैं, मुँहमें दाँत एक भी नहीं रहा, खाल लटक आई है, लठिया टेककर सिर हिलाते—मानों अपने किये पिछले कर्मों पर पछताते—चले आते हैं। आनन्दकन्दजी जवानीमें एक बोतल बरांडी और तीन मुर्गियों-

का ' जलपान ' करते थे, लेकिन अब वे ही लंबा तिलक लगाये रुद्राक्षकी माला पहने, उपदेश देते घूमते हैं। उनके खानेके समय अगर कोई मद्य-मांसका नाम भी ले लेता है तो वे परोसी हुई थाली छोड़कर उठ खड़े होते हैं और गालियोंकी ' फुलझड़ी ' बन जाते हैं। तो बताओ, अब जंगलमें क्या बाकी है?

बतसियाकी मा हीराको देखो। जब वह मेरे फूलबागमें छिप-कर फूल चुराने आती थी तब जान पड़ता था कि मानों नन्दनव-नसे चलती-फिरती फूली-फली कल्पलता लाकर छोड़ दी गई है। उसकी अलकोंके साथ हवा खेला करती थी और उसके आँचलको पकड़कर गुलाबका पेड़ छेड़छाड़ किया करता था। उसी हीराको आज देखो——बकझक करती हुई चावल फटक रही है। कपड़े मैले हैं, बीच बीचमें टूटे हुए दाँतोंने चेहरेको विकट बना रक्खा है, शरीर दुबला और काला पड़ गया है, हड्डियाँ निकल आई हैं और झुर्रियाँ पड़ गई हैं। यही वह रसरंग तरंगवती युवती हीरा है! तुम्हीं बताओ, अब जंगलमें क्या बाकी है?

तो यह बात निश्चत है कि मैं वनको न जाऊँगा। क्योंकि मेरे लिए घर ही वन हो रहा है। अच्छा तो फिर क्या करूँगा? महाकवि कालिदासने सर्वगुणसम्पन्न रघुवंशियोंके लिए बुढ़ापेमें मुनि-वृत्तिकी व्यवस्था की है। वे लिखते हैं——

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥

रघुवंशी लोग बचपनमें विद्याभ्यास, जवानीमें विषयभोग, बुढ़ापेमें मुनिवृत्ति और चौथेपनमें योगसाधन द्वारा शरीर त्याग करते थे। मैं निश्चित रूपसे कह सकता हूँ कि कालिदासने ४० वर्षकी अवस्था होनेके पहले ही रघुवंश लिखा है। यह प्रमाणित करनेके लिए मैं इन दोनों ग्रन्थोंसे दो श्लोक उद्धृत करूँगा। रघुवंशमें अजके विलापमें आप लिखते हैं—

इदमुच्छ्वसितालकं मुखं तव विश्रान्त कथं दुनोति माम्।
निशि सुप्तमिवैकपंकजं विरताभ्यन्तरषट्पदस्वनम्॥

अर्थात् हे इन्दुमती, यह तुम्हारा मुख, जिसकी अलकें हवासे हिल रही हैं—किन्तु जिसमेंसे कोई बात नहीं निकलती, मुझे बहुत ही व्यथित कर रहा है। यह वैसा ही जान पड़ता है जैसे एक कमलका फूल रातको मुकुलित होगया हो और उसके भीतर भौंरे गुंजन कर रहे हों। यह जवानीका रोना है।

इसके बाद कुमारसम्भवमें, रतिविलापमें, वे ही कालिदास लिखते हैं:—

गत एव न ते निवर्तते स सखा दीप इवानिलाहतः।
अहमस्य दशेव पश्य मामविषह्यव्यसनेन धूमिताम्॥

रति कहती है—वसन्त, देखो तुम्हारा सखा (कामदेव) हवाके मारे दीपककी तरह चला ही गया, अब नहीं लौटनेका। मैं, दीपकके बुझनेके पीछेकी दशा ऐसी असह्य कष्टरूप धुएँसे मलिन हो रही (या सुलग रही) हूँ। यह बुढ़ापेका विलाप है।

अस्तु, मेरे कहनेका मतलब यह है कि कालिदास अगर (रघुवंश लिखते समय) बुढ़ापेके गौरवपूर्ण कर्तव्यको समझते तो कभी बूढोंके लिए मुनिवृत्तिकी व्यवस्था न करते । बिस्मार्क मोल्टके और फ्रेडरिक विलियम् बूढ़े थे, अगर वे मुनिवृत्ति ग्रहण कर लेते तो इस जर्मन-नेशनलिटी (Nationality) की कल्पना कौन करता ? टियर्—बूढ़े टियर अगर मुनिवृत्ति ग्रहण कर लेते तो फ्रान्सकी स्वाधीनता और साधारण तन्त्रकी स्थापना कहाँसे होती ? ग्लाडस्टन और डिस्रेली बूढ़े थे, अगर वे मुनिवृत्ति ग्रहण करते तो पार्लियामेंटका रिफार्म (सुधार) और आयरिश चर्चाका डिसेस्टाब्लिशमेंट (Disestablishment) कैसे होता ?

मेरी समझमें बुढ़ापा ही वास्तवमें काम करनेका समय है । मैं आँत और दाँत दोनोंसे ही चौथेपनमें पहुँचे हुए बूढ़ेकी बात नहीं कहता, उसका तो दुबारा लड़कपन आगया समझना चाहिए । जो लोग जवान भी नहीं रहे, मगर बूढ़े भी नहीं हुए, उन्हीं प्रौढ़ पुरुषोंकी बात कह रहा हूँ । जवानी काम करनेकी अवस्था है सही, किन्तु उस समय पूर्ण और पक्का अनुभव न होनेसे बड़े और महत्त्वके काम अच्छी तरह नहीं किये जासकते । उस समय एक तो बुद्धि कच्ची रहती है, दूसरे राग द्वेष और भोगवासनाकी मात्रा अधिक होती है । एक दो अलौकिक शक्तिशाली महापुरुषोंको छोड़कर, हर एक आदमी जवानीमें विशेष महत्त्वके काम नहीं कर सकता । जवानी ढलते समय मनुष्य अनुभवी, बहुदर्शी, परिपक्वबुद्धि, लब्धप्रतिष्ठ और भोगवासनाहीन हो जाता है, इस कारण वही उसके

काम करनेका समय होता है। इसी लिए मेरी सलाह है कि अपनेको बूढ़ा समझ सब कामकाज छोड़ मुनिवृत्ति ग्रहण करना कदापि बुद्धिमानी नहीं।

आप लोग शायद कहेंगे कि तुम्हारे कहनेकी कोई जरूरत नहीं, शारीरिक शक्तिके रहते कोई भी कामकाज नहीं छोड़नेका। माताका दूध पीनेसे लेकर अन्तिम विल (वसीयतनामा) लिखने तक सब लोग कामकाजकी चिन्तामें लगे रहते हैं। आपका यह कहना सच है, लेकिन मैं ऐसे कामकाजमें बूढ़ोंको लगाना नहीं चाहता। जवानीमें जो कुछ किया जाता है सो अपने लिए। जवानी ढलने पर जो कुछ करना चाहिए वह पराये लिए। यही मेरी राय है। यह कभी न सोचना कि अभीतक मैं अपना काम ही पूरा नहीं कर सका, पराया काम क्या करूँ? भाई, अपना काम तो अगर लाख वर्षकी आयु होती, तो भी पूरा न होता। मनुष्यकी स्वार्थपरता असीम है, उसका अन्त नहीं। इसीसे कहता हूँ कि बुढ़ापेमें, अर्थात् प्रौढ़ावस्थामें अपना काम समाप्त समझकर पराये काम (जाति, समाज, देश और धर्मकी भलाई और उन्नति) में मन लगाओ। यही यथार्थ मुनिवृत्ति है। जंगलमें जाकर पंचाग्नि तपना, जाड़ा गर्मी वर्षाका वेग शरीर पर सहना, या निराहार रह कर शरीर नष्ट करना मुनिवृत्ति नहीं है। यथार्थ मुनिवृत्ति ग्रहण करो।

आप अगर कहें कि बुढ़ापेमें भी जो अपने लिए या पराये लिए काम करेंगे तो ईश्वरका भजन कब करेंगे? परकाल कब बना-

वेंगे ? तो मैं कहता हूँ कि केवल बुढ़ापेमें क्यों, लड़कपनसे ही ईश्वरको हृदयमें स्थापित कर भजो–अपना परलोक बनाओ । इसके लिए किसी खास अवस्थाकी आवश्यकता नहीं है । जो काम सब कामोंके ऊपर है उसे बुढ़ापेके लिए उठा रखनेकी क्या जरूरत है ? लड़कपनमें, असली जवानीमें, भरी जवानीमें, बुढ़ापेमें, सब समय ईश्वरका ध्यान धरो, भक्तिभावके साथ उसका आश्रय ग्रहण करो । इसके लिए और कामोंके रोकनेकी जरूरत नहीं है । परोपकार देश–समाज–जाति और धर्मकी भलाई उसी ईश्वरकी प्रसन्नताके लिए करो । याद रहे, ईश्वरविश्वासके साथ जिस कामको करोगे वही सुसम्पन्न होगा, मंगलदायक होगा । उससे तुम्हारा यश बढ़ेगा, नाम होगा और पुण्य होगा ।

मुझे जान पड़ता है कि बहुतसे पाठकोंको मेरी ये बातें अच्छी नहीं लगतीं । वे मन-ही-मन कहते होंगे कि अभी तो हीराकी बातचीत हो रही थी, बीचमें यह ईश्वर और परोपकारका पचड़ा क्यों लगा दिया ? अभी तो बुढ़ापेकी ढेंकीमें मैं ‘ बंगदर्शन ’ के लिए धान कूट रहा था, बीचमें यह शिवका गीत क्यों गाने लगा ? मैं उन पाठकोंसे इसके लिए क्षमा मागता हूँ । किन्तु, मेरी समझमें हरएक काममें कुछ कुछ शिवके गीत गाना अच्छा है ।

अच्छा हो या बुरा, बूढ़ेके लिए और कोई उपाय नहीं है । तुम्हारी हीरा चंपा जूही बेलाका झुंड अब मेरी तरफ देखता भी नहीं, मेरी छाँह छूना भी उसे नापसन्द है । तुम्हारे मिल, कोम्ट,

स्पेन्सर, फुअर, वर्क मेरा मनोरंजन नहीं कर सकते। तुम्हारे दर्शनशास्त्र—तुम्हारा विज्ञान सब असार है—अंधेका शिकार है। इस वर्षाके दुर्दिनमें, आज कालरात्रिके इस अन्तिम कुलग्नमें, इस नक्षत्रहीन घोरघटामण्डित अमावास्याकी आधी रातमें, उस ईश्वर, उस अगतिके गति, दयासिन्धु, भक्तबन्धु ईश्वरके सिवा और कौन मेरी रक्षा करेगा? इस संसारनदीकी तपी हुई बालूमें, इस वेगसे बहनेवाली वैतरणीके आवर्तभीषण किनारेमें, इस दुस्तर पारावारके प्रथम तरंगाघातमें और कौन मेरी रक्षा कर सकता है? बड़े वेगसे जीवननदीमें तूफान आ रहा है, चारों ओर घोर निराशाका अंधकार है! हे नाथ! हे आर्तत्राणपरायण! चारों ओर घोर अंधकार है! मेरी यह जीर्ण जर्जर नौका पापके बोझसे दबी जा रही है, भगवन्, आपही इस भवसागरके पार लगानेवाले कर्णधार हो। मुझे आपहीका भरोसा है। आपके सिवा और कोई रक्षा नहीं कर सकता। जगदीश, त्राहि! त्राहि!

(नं० ५)

चिदानन्दकी बिदाई।

सम्पादक महाशय!

बिदा होता हूँ; अब नहीं लिखूँगा। नहीं बनी। आपके साथ नहीं बनी, पाठकोंके साथ नहीं बनी, इस संसारके साथ मेरी नहीं बनी, खुद मेरे ही साथ मेरी नहीं बनी। अब कहीं यह बंशी बज

सकती है ? बंशी, बजना चाहती है, तो भी बजती नहीं—बंशी फट गई है । हृदयकी बंशी, फिर जरा एक वार बज ! हाय ! क्या अब भी तू उसी तरह बजना जानती है ? अब भी तुझे वह तान याद है ? नहीं, तू भी वह नहीं है—और मैं भी वह नहीं रहा; " औरै तन, औरै मन, औरै वन ह्वै गये ! " तू बंशी घुन गई है और मुझमें भी घुन लग गया है । मेरे अब वह स्वर नहीं है, बजाऊँगा क्या ? अब वह रस नहीं है, सुनेगा कौन ? हृदय, एक बार फिर बज । इस जगत्--संसारमें—बहरे, धनकी चिन्तामें चूर और मूढ़ जगतमें वैसे ही फिर मनकी गूढ़ बातोंको उसी तरह कह । कहनेसे क्या कोई सुनेगा ? तब अवस्था थी—कितना समय हुआ जब चिट्ठा लिखा था—अब इस अवस्थामें ये नीरस बातें कौन सुनेगा ? अब वह वसन्त नहीं है—इस समय कण्ठहीन कोकिलका कुहू शब्द कौन सुनेगा ?

भाई, अब कुछ कहनेकी जरूरत नही है—अब बजनेकी जरूरत नहीं है—टूटे बाँसकी भद्दी आवाजमें कुक्कुररागिनी अलापना व्यर्थ है । इस समय मेरे हँसनेसे कोई हँसेगा नहीं—रोनेसे बल्कि लोग हँसने लगेंगे । उस उमरके हँसने रोनेमें सुख होता है—लोग भी साथ ही साथ हँसते रोते हैं । और इस समयका हँसना रोना—छिः ! केवल लोकहँसाई कराना है ।

हे सम्पादककुलश्रेष्ठ ! सच जानिए, अब चिदानन्दमें वह रस नहीं है । मेरे रसिक बाबू नहीं हैं, वह भंगका सुभीता नहीं रहा—मालूम नहीं, वह श्यामा ग्वालिन और उसकी मंगला गाय कहाँ

है। सच है कि मैं तब भी अकेला था और अब भी अकेला हूँ; किन्तु तब मैं अकेला ही एक हजार था और इस समय एक होने पर भी आधा रह गया हूँ। अच्छा, अकेलेको इतना बन्धन क्या है? जिस तोतेको मैंने पाला था, वह न जाने कब मर गया—लेकिन उसके लिए आज भी रोता हूँ। जिस फूलको मैंने खिलाया था, वह न जानें कब सूख गया—लेकिन उसके लिए आज भी रोता हूँ। जिस जलबिंबको एक बार जलके बहावमें सूर्यकी किरणोंसे उज्ज्वल देखा था उसके लिए भी आजतक रोता हूँ। चिदानन्द तो अन्तरसे सन्यासी है—फिर उसे इतना बन्धन क्यों है? यह देह तो सड़ उठा—फिर ये हृदयके बंधन क्यों नहीं टूटते? घर तो जल गया—आग क्यों नहीं बुझती? तालाब तो सूख गया फिर इस कीचड़में कमल क्यों खिलते हैं? आँधी तो थम गई, फिर समुद्रमें तूफान क्यों है? फूल तो सूख गया—गंध क्यों है? सुख चला गया—आशा क्यों है? स्मृति क्यों है? जीवन क्यों है? प्रेम चला गया, यत्न क्यों है? प्राण चले गये, पिण्डदान क्यों है? चिदानन्द——वह चिदानन्द, जो चंद्रमासे ब्याह करता, कोयलके साथ गाता और फूलोंको ब्याहता था——तो चला गया, भंगका रंग क्यों है? बंशी फट गई, फिर ऋ, ग, म क्यों है? जान चली गई भाई, अब साँस क्यों है? सुख चला गया भाई, फिर उसके लिए रोना क्यों है?

तब भी रोता हुँ। पैदा होते ही रोया था, और रोते ही मरूँगा?

अनुगत स्वगत और विगत

श्रीचिदानन्द चौबे

चिदानन्दकी जबानबन्दी ।

खुशनवीस जूनियर लिखित* ।

उस भंगभक्त चिदानन्दकी बहुत दिनोंसे खबर नहीं मिली थी । बहुत कुछ ढूँढ़ा—पता लगाया; एक दिन अकस्मात् मैंने उसको फौजदारी अदालतमें देखा । देखा कि बेचारा ब्राह्मण एक पेड़के नीचे बैठा—उसकी जड़का सहारा लिये आँखें बन्द किये नारियलके हुक्केमें तमाखू पी रहा है । मैंने सोचा और कुछ नहीं, ब्राह्मणने लोभके फेरमें आकर कहींसे भंग चुराई है; मुझे निश्चित रूपसे मालूम है कि चौबे कभी और चीज नहीं चुरायगा । उसके पास ही एक खाकी वर्दी पहने सिपाही भी देख पड़ा । मैं वहाँसे धीरे धीरे खिसक कर आड़में हो गया, क्या जाने, शायद चिदानन्द जमानत देनेके लिए कहे । दूर खड़े होकर देखने लगा कि क्या होता है ।

कुछ देरके बाद चिदानन्दकी पुकार हुई । तब एक सिपाही उसे इजलासमें ले गया । मैं भी पीछे पीछे गया, खड़े होकर दो एक बातें सुननेसे कुछ कुछ मामला मालूम हुआ ।

इजलासमें कायदेके माफिक ऊँची जगह पर हाकिम विराजमान थे । हाकिम अँगरेज नहीं, एक देशी धर्मावतार थे—पूछनेसे मालूम हुआ आप डिपुटी साहब हैं । चिदानन्द आसामी नहीं, गवाह था । मुकद्दमा गाऊ-चोरीका है । फर्यादी वही श्यामा ग्वालिन है ।

सिपाहीने चिदानन्दको गवाहके कटहरेमें भर दिया । तब चिदानन्द धीरे धीरे मुसकराने लगा । सिपाहीने धमकाया—"हँसता क्यों है?"

---

* पुराने खुशनवीस, अर्थात् लाला मदारीलाल ।

चिदानन्दने हाथ जोड़कर कहा—" बाबा, मैंने किसके खेतमें धान खाये हैं जो मुझे इस कटहरेमें लाकर बंद कर दिया है ? "

सिपाही महाशय बात नहीं समझे, उन्होंने दाढ़ी हिलाकर कहा—" यह दिल्लगीकी जगह नहीं है, हलफ पढ़ो । "

चिदा०—" पढ़ाओ न भैया । "

तब एक मुहर्रिर हलफ पढ़ाने लगा । बोला—" कहो, मैं परमेश्वरको प्रत्यक्ष जानकर—"

चि०—(विस्मयके साथ) " क्या कहूँ ? "

मुह०—"सुनते नहीं हो ? कहो—परमेश्वरको प्रत्यक्ष जानकर—"

चिदा०—" परमेश्वरको प्रत्यक्ष जानकर ! आप तो अनर्थ कर रहे हैं । "

हाकिमने देखा, गवाह कुछ गड़बड़ मचा रहा है । उसने कहा—" अनर्थ क्या ? "

चिदा०—" 'परमेश्वरको प्रत्यक्ष जानकर' यह कहना होगा ?"

हाकिम०—"हर्ज़ क्या है ? हलफके फारम पर लिखा ही है ।"

चिदा०—" हुजूर बड़े विज्ञ हाकिम मालूम पड़ते हैं । एक बात मुझे यह कहना है कि गवाही देते देते दो एक छोटे मोटे झूठ बोले भी जा सकते हैं, लेकिन शुरूसे ही इतना बड़ा झूठ बोलना क्या आप अच्छा समझते हैं ? "

हाकिम०—" इसमें झूठ क्या है ? "

चिदानन्दने अपने मनमें कहा—" इतनी बुद्धि तुम्हारे न होती तो यह पद-वृद्धि कैसे होती ?" प्रकटमें कहा—"धर्म्मावतार

मुझे कुछ कुछ जान पड़ता है कि परमेश्वर प्रत्यक्षकी चीज नहीं है । मेरी ही आँखोंका दोष हो, या चाहे जो हो, मैंने आजतक परमेश्वरको प्रत्यक्ष नहीं देख पाया । जान पड़ता है आप लोग आईनका चश्मा नाक पर चढ़ाकर उसे प्रत्यक्ष देख सकते हैं, किन्तु मैं जब उसे इस अदालतके घरमें प्रत्यक्ष नहीं देख पाता—तब कैसे कहूँ कि परमेश्वरको प्रत्यक्ष जानकर—"

फर्यादीके वकील बिगड़ पड़े—उनका समय बहुमूल्य ठहरा, वह मिनिट मिनिटमें चमकदार चाँदीके सिक्के बरसाता है। यह दरिद्र गवाह उसी समयको नष्ट कर रहा था। वकीलने गर्म होकर कहा—"अजी जनाब, इस अपने Theological Lecture (परमार्थ-विद्याविषयक व्याख्यान) को आर्यसमाजके लिए रहने दीजिए। यहाँ आपको आईनके माफिक काम करना होगा।"

चिदानन्दने उसकी तरफ घूम कर देखा और मन्द हास्यके साथ कहा—"जान पड़ता है, आप वकील हैं।"

वकीलने हँसकर कहा—"कैसे पहचाना?"

चिदा०—"बहुत ही सहजमें। मोटी चैन और मैला शमला देख कर। पर महाशय, आपके लिए यह Theological Lecture नहीं है! मैं मानता हूँ कि जब मवक्किल आता है आप लोग परमेश्वरको प्रत्यक्ष देखते हैं।"

वकीलने गुस्सेसे उठकर हाकिमसे कहा—"I ask the protection of the court against the insults of this witness." (अर्थात् इस गवाहने जो मेरा अपमान या मुझसे गुस्ताखी की है उसके विषयमें मैं अदालतसे मदत चाहता हूँ।)

अदालतने कहा—" Oh Baboo, the witness is your own witness, and you are at liberty to send him away if you like." (यह तुम्हारा ही एक गवाह है, और अगर तुम चाहो तो इसे अदालतसे बाहर करनेके लिए स्वतन्त्र हो।)

चिदानन्दको बिदा कर देनेसे वकील बाबूका मुकदमा बिगड़ता था। वकील साहब चुपचाप बैठ गये। चिदानन्दने सोचा, "यह हाकिम जातिभ्रष्ट है—इसकी विद्या बुद्धि भी वैसी ही है।"

हाकिमने रंग-ढंग देखकर मुहर्रिरको हुकुम दिया—" गवाहको उसमें objection (एतराज़) है—उससे simple affirmation (साधारण हलफ) कराओ।"

तब मुहर्रिरने चिदानन्दसे कहा—" अच्छा, उस बातको छोड़ दो—कहो, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ—कहो!"

चिदा०—" मेरी समझमें पहले ' क्या प्रतिज्ञा करता हूँ ' यह जानकर प्रतिज्ञा करना ठीक होगा।"

मुहर्रिरने हाकिमकी तरफ देखकर कहा—" धर्मावतार, साक्षी बड़ा हरामजादा है।"

वकील बाबू भी बोल उठे—Very obstructuve, (अर्थात् बहुत ही विघ्न डालेनवाला है।)

चिदा०—(वकीलसे) " सादे या कोरे कागज पर दस्तखत करानेकी चाल अदालतके बाहर अवश्य है, अब क्या अदालतके भीतर भी वही चलाई जायगी?"

वकील—"सादे कागज पर दस्तखत करनेको तुमसे कौन कहता है?"

चिदा०—"क्या प्रतिज्ञा करनी होगी, यह बिना जाने प्रतिज्ञा करना और कागजमें क्या लिखा जायगा यह, जाने बिना दस्तखत करना, एक ही बात है।"

हाकिमने मुहर्रिरसे कहा—"पहले इसको प्रतिज्ञा सुना दो, गोलमाल करनेकी कोई जरूरत नहीं है।"

मुहर्रिरने कहा—"सुनो, तुमको कहना होगा 'मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जो गवाही दूँगा वह सच होगी। मैं कोई बात छिपाऊँगा नहीं—सच ही सच कहूँगा'।"

चिदा०—"वाह वाह वाह।"

मुहर्रिर—"इसके क्या माने?"

चिदा०—"पढ़ाओ मैं पढ़ता हूँ।"

चिदानन्दने कुछ गोलमोल नहीं किया—प्रतिज्ञा की। तब उससे सवाल करनेके लिए वकील बाबू खड़े हुए और आँखें लाल लाल करके चिदानन्दसे बोले—"अब बदमाशी न करना—मैं पूछता हूँ, उसका ठीक ठीक जवाब देना। व्यर्थकी बातें न करना।"

चिदा०—"आप जो पूछेंगे वही मुझे कहना होगा? और कुछ नहीं?"

वकील—"नहीं।"

तब चिदानन्दने हाकिमकी तरफ फिर कर कहा—"मगर मुझसे प्रतिज्ञा कराई गई है कि मैं कोई बात नहीं छिपाऊँगा। धर्माव-

तार, बेअदबी माफ हो। मोहल्लेमें आज एक जगह 'रहस' होने वाला था, इच्छा थी कि देखने जाऊँगा; लेकिन वह इच्छा यहाँ पूरी हो गई। वकील बाबू प्रधानजी हैं, मैं रहसधारियोंका लड़का हूँ, जो ये कहलावेंगे वही कहूँगा, जो न कहलावेंगे वह नहीं कहूँगा। जो न कहलावेंगे वह आप ही छिपा रहेगा। मेरी प्रतिज्ञा अवश्य ही झूठ होगी—क्षमा कीजिएगा।"

हाकिम—"जिसे कहनेकी जरूरत जान पड़े उसे बिना पूछे भी कह सकते हो।"

तब चिदानन्दने सलाम करके कहा—"बहुत खूब।" वकील बाबू फिर सवाल करने लगे—"तुम्हारा नाम क्या है?"

चिदानन्दने सलाम करके कहा—"श्रीचिदानन्द चौबे।"

वकील—"तुम्हारे बापका नाम क्या है?"

चिदा०—"क्या आपने कहीं मेरा ब्याह ठीक किया है? आप बापका नाम क्यों पूछते हैं?"

वकीलने अग्निशर्मा होकर हाकिमसे कहा—"हजूर! ये सब बातें Contempt of Court (अदालतका अपमान करनेवाली) हैं।"

हुजूर वकीलकी दुर्दशा देखकर एकदम नाखुश भी नहीं थे—उन्होंने कहा—"आपहीका तो गवाह है!"

लाचार वकील बाबू फिर गवाहकी तरफ झुके, बोले—"बतलाओ। तुमको बतलाना पड़ेगा।"

चिदानन्दने बापका नाम भी बतला दिया। तब फिर वकीलने पूछा—"तुम कौन जाति हो?"

चिदा०—" हिन्दू।"

वकील—" अः! कौन वर्ण हो?"

चिदा०—" एकदम काला।"

वकीलने खीझकर कहा—" दूर हो! ऐसा भी गवाह कोई लाता है! मैं कहता हूँ कि तुम्हारे जाति है?"

चिदा०—" जाति है नहीं तो ले कौन गया?"

हाकिमने देखा, वकीलके किये कुछ नहीं होता। हाकिमने खुद पूछा—" हिन्दुओंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, मल्लाह, पासी वगैरह बहुत सी जातियाँ हैं, जानते हो न?—तुम इनमेंसे कौन जाति हो?"

चिदा०—" धर्मावतार, यह वकील बाबूकी ही बुद्धिका दोष है! देखते हैं कि मेरे गलेमें जनेऊ है, नामके साथ भी 'चौबे' लगा हुआ है। मैं क्या जानूँ कि वकील बाबू इस पर भी नहीं समझ सके कि मैं ब्राह्मण हूँ।"

हाकिमने लिख लिया—जाति ब्राह्मण।

फिर वकीलने पूछा—" तुम्हारे अवस्था कितनी है?"

इजलासमें एक बड़ी घड़ी लगी हुई थी—उसकी तरफ देखकर और हिसाब लगाकर चिदानन्दने कहा—" मेरी अवस्था ५१ साल, २ महीना, १३ दिन, ५ घंटा, ५ मिनिट, ५० सेकिण्डकी है।"

वकील—" अरे! तुम्हारे घंटा मिनिट कौन पूछता है?"

चिदा०—" क्यों! अभी अभी आपने प्रतिज्ञा कराई है कि कोई बात न छिपाऊँगा।"

वकील—"जो तुम्हारी इच्छा हो! करो। मैं तुमसे पेश नहीं पा सकता। तुम्हारा निवास कहाँ है?"

चिदा०—"मेरे निवास नहीं है।"

वकील—"अजी मैं पूछता हूँ! तुम्हारा घर कहाँ है?"

चिदा०—"घर कैसा! मेरे तो एक हाता या कोठरी भी नहीं है।"

वकील—"तो फिर रहते कहाँ हो?"

चिदा०—"कभी यहाँ, कभी वहाँ।"

वकील—"कोई अड्डा तो है न?"

चिदा०—"था, जब रसिक बाबू थे। अब नहीं है।"

वकील—"अब कहाँ हो?"

चिदा०—"क्यों, इसी अदालतमें।"

वकील—"कल कहाँ थे?"

चिदा०—"एक दूकानमें।"

हाकिमने कहा—"ज्यादा बक बक करनेकी जरूरत नहीं। मैं लिखे लेता हूँ कि रहनेका कहीं ठिकाना नहीं है। इसके बाद?"

वकील—"तुम्हारा पेशा क्या है?"

चिदा०—"पेशा कैसा? मैं वकील हूँ या वेश्या?"

वकील—"मेरा मतलब यह है कि खाते-पीते कैसे हो?"

चिदा०—"भातमें दाल डालकर दाहिने हाथसे कौर उठाकर मुँहमें रखकर गलेके नीचे उतार जाता हूँ।"

वकील—"वह दाल-भात मिलता कहाँसे है?"

चिदा०—"भगवान् देते हैं तो मिल जाता है, नहीं तो नहीं।"

वकील—" कुछ पैदा करते हो ? "

चिदा०—" एक पैसा भी नहीं। "

वकील—" तो क्या चोरी करते हो ? "

चिदा०—" ऐसा होता तो इससे मुझे पहले ही आपकी शरणमें आना पड़ता और आप भी उसमेंसे कुछ हिस्सा पाते। "

वकीलने झेपकर अदालतसे कहा—" मैं इस गवाहको नहीं चाहता। मुझसे इसका इजहार नहीं लिया जा सकता। "

श्यामा फर्यादी थी, उसने वकीलसे कहा—" नहीं, इस गवाहकी गवाही जरूर लेनी होगी। यह ब्राह्मण सच ही कहेगा। मुझे खूब मालूम है कि यह झूठ नहीं बोलनेका। आप इससे पूछनेका ढंग नहीं जानते—इसीसे इतनी गड़बड़ हो रही है। उसका पेशा क्या होगा ? वह ब्राह्मण ठहरा, इधर उधर खाता और घूमता रहता है। उससे पूछते हो, कुछ पैदा करते हो ? वह क्या कहेगा ? "

तब वकीलने हाकिमसे कहा—" लिख लीजिए, पेशा भीख माँगना। "

अबकी चिदानन्दको क्रोध आगया। उसने गरज कर कहा—" क्या ? चौबेकी वृत्ति भिक्षा है ? मैं हलफके साथ मुक्तकण्ठ होकर कहता हूँ कि मैंने कभी किसीसे एक पैसा भी नहीं माँगा। "

अब श्यामासे रहा नहीं गया। उसने कहा—" यह क्या महाराज, तुमने कभी भंग माँगकर नहीं पी ? "

चि०—" दूर हो पगली औरत ! भंग क्या पैसा है ? मैंने कभी किसीसे एक पैसा भी नहीं माँगा। "

हाकिमने हँसकर कहा—" क्या लिखें चिदानन्द ? "

चिदानन्दने नर्म होकर कहा—" लिख लीजिए, पेशा ब्राह्मण-भोजनका निमन्त्रण ग्रहण करना । "

सब लोग हँस पड़े । हाकिमने यही लिख लिया ।

तब वकील साहब मुकद्दमेंके सम्बन्धमें गवाहसे प्रश्न करने लगे, पूछा—" क्या तुम फर्यादीको पहचानते हो ? "

चि०—" नहीं । "

श्यामा जोरसे बोल उठी—" यह क्या महाराज ! इतने दिनोंसे मेरा दूध दही खाया और आज कहते हो मैं नहीं पहचानता । "

चिदानन्दने कहा—"यह तो मैं नहीं कहता कि तुम्हारे दूध दहीको नहीं पहचानता । तुम्हारे दूध दहीको खूब पहचानता हूँ । जब देखता हूँ कि एक पाव दूधमें तीन पाव पानी है तभी समझ जाता हूँ कि यह श्यामा ग्वालिनका दूध है; जब देखता हूँ कि दहीमें तोड़ भरा हुआ है तभी समझ लेता हूँ कि यह श्यामाका दही है । दूध-दही क्यों नहीं पहचानता ? "

श्यामाने जरा टेढ़े होकर कहा—" मेरा दूध-दही पहचानते हो, और मुझे नहीं पहचानते ? "

चिदानन्दने कहा—" औरतोंको कब कौन पहचान सका है बहिन ! विशेष कर ग्वालेकी औरतके सिर पर दूधकी मटकी होने पर किसकी ताकत है जो उसे पहचान सके ? "

वकील साहब फिर सवाल करने लगे—"मालूम हुआ, तुम फर्यादीको पहचानते हो—उसके साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध है ? "

चिदा०—“ खूब कहा—इतने गुण न होते तो वकील कैसे होते ? ”

वकील—“ तुमने मुझमें क्या गुण देखा ! ”

चिदा०—“ ब्राह्मणके लड़के और ग्वालेकी औरतमें भी आप सम्बन्ध ढूँढ़ रहे हैं, यह क्या कोई कम गुण है ? ”

वकील—“ ऐसा सम्बन्ध क्या हो नहीं सकता ? कौन जाने, तुम उसके पोष्यपुत्र भी हो सकते हो ? ”

चिदा०—“उसका तो नहीं, मगर उसकी गऊका अवश्य हूँ ।”

वकील—“ समझ लिया, तुम्हारे साथ फर्यादीका कुछ सम्बन्ध है । अगर साफ साफ कह देते तो क्या कुछ हर्ज था—इतना दिक क्यों करते हो ? अच्छा बतलाओ इस मुकद्दमेमें तुम क्या जानते हो ?”

चिदा०—“ यही जानता हूँ कि इस मुकद्दमेमें आप वकील हैं, श्यामा फर्यादी है, मैं साक्षी हूँ । और यह नीच जातिका आदमी आसामी है । ”

वकील—“यह नहीं, गऊचोरीका क्या जानते हो ?

चिदा०—“ गऊचोरी तो मेरे बाप—दादा भी नहीं जानते थे । क्या आप कृपा करके यह विद्या मुझे बता देंगे ? मुझे दूध—दहीकी बड़ी ज़रूरत रहती है । ”

वकील—“आः—कहता हूँ कि तुमने गऊ चुराते देखा है ? ”

चिदा०—“ एक दिन देखा था । रसिकबाबूकी गऊको एक साला मोची——”

वकील—“ओः ! मैं यह पूछता हूँ कि श्यामा ग्वालिनकी गाय जब चुराई गई, तब तुमने उसे देखा था ? ”

चिदा०—"नहीं, चोर ऐसा बुद्धिमान् नहीं था कि मुझे बुलाकर गवाह बनाकर गऊ चुराता। अगर ऐसा होता तो आपको और मुझे दोनोंको ही सुभीता होता।"

श्यामाने देखा, वकीलको व्यर्थ ही रुपये दिये गये। तब उसने चुपकेसे वकीलके कानमें कह दिया—"वह ब्राह्मण यह कुछ नहीं जानता, केवल गऊ पहचानता है।"

अब वकील महाशयकी समझमें आया। फिर गरज कर पूछा—"तुम गऊ पहचानते हो?"

चिदानन्दने मीठी हँसीके साथ कहा—"वाह, पहचानता क्यों नहीं—न पहचानता तो आपसे इतनी मीठी बात क्यों करता?"

हाकिमने देखा, गवाह बहुत बढ़ाबढ़ी कर रहा है। हाकिमने कहा—"यह सब रहने दो।"

श्यामाकी श्यामला गऊ अदालतके आगेके मैदानमें बँधी हुई थी—इजलाससे दिखाई देती थी। डिपुटी बाबूने उसकी तरफ इशारा करके पूछा—"तुम इस गऊको पहचानते हो?"

चिदानन्दने हाथ जोड़कर कहा—"कौन गऊ धर्मावतार?"

हाकिम—"कौन गऊ क्या? सामने एक ही तो गऊ है!"

चिदा०—"आप देखते हैं एक, मैं देखता हूँ बहुतसी।"

हाकिमने चिढ़ाकर कहा—"देखते नहीं हो वह श्यामला?"

चिदानन्दने श्यामला गऊकी तरफ न देखकर वकीलके शमलेकी तरफ देखा, और कहा—"यह शमला भी क्या चोरीका है?"

चिदानन्दकी दुष्टता अब हाकिमके लिए असह्य हो उठी। हाकिमने कहा—“ तुम अदालतके काममें विघ्न डाल रहे हो—Contempt of Court के लिए तुम पर पाँच रुपया जुर्माना । ”

चिदानन्दने जमीनतक झुककर सलाम किया, और फिर हाथ जोड़कर कहा—“ बहुत खूब हुजूर ! जुर्माना वसूल कौन करेगा ?”

हाकिम—“ क्यों ? ”

चिदा०—“ इस लोकमें तो मुझसे जुर्माना वसूल होनेकी कोई संभावना नहीं है—, इस लिए जो जुर्माना वसूल करेगा उससे पुछूँगा कि वह परलोक तक जुर्माना वसूल करनेके लिए मेरे साथ चलनेको तैयार है या नहीं ? ”

हाकिम—“जुर्माना न दे सकोगे, तो जेल जाना पड़ेगा ! ”

चिदा०—“ कितने दिनोंके लिए धर्मावतार ?”

हाकिम०—“जुर्माना न अदा होनेपर एक महीनेके लिए ।”

चिदा०—“ क्या आप कृपा करके दो महीनेको नहीं भेज सकते ? ”

हाकिम—“तुम अधिक कैद क्यों चाहते हो ? ”

चिदा०—“ आजकल समय बड़ा नाजुक आगया है”अब ब्राह्मणभोजनके निमन्त्रण बहुत कम मिलते हैं—अगर जेलखानेमें दो महीने तक आप ब्राह्मणभोजनकी व्यवस्था कर देंगे तो यह गरीब ब्राह्मण आपको आशीर्वाद देगा । ”

ऐसे आदमीको कैद या जुर्माना करनेसे क्या होगा ? हाकिमने हँसकर कहा—“ अच्छा अगर तुम गड़बड़ न करके साफ साफ

बयान दोगे तो तुम्हारा जुर्माना माफ कर दिया जा सकता है। बताओ, इस गऊको तुम पहचानते हो कि नहीं ?"

हाकिमने एक सिपाहीको आज्ञा दी कि वह पास जाकर श्यामाकी गऊ दिखला दे। सिपाहीने वही किया। क्षोभसे भरे हुए वकीलने पूछा—"इस गऊको तुम पहचानते हो ?"

चिदा०—" इस सींगवालीको--यह कहो।"

वकील—" तुम क्या समझे थे ?"

चिदा०—" मैं समझा था शमलावाली। खैर, हाँ--मैं इस सींगवाली गऊको पहचानता हूँ। इसके साथ मेरे अच्छी तरह बोल-चाल है।"

वकील—" यह गऊ किसकी है ?"

चिदा—" मेरी।"

वकील—" तुम्हारी ?"

चिदा०—" हाँ, मेरी।"

हरे हरे ! श्यामाका मुँह सूख गया ! वकीलने देखा, मुकद्दमा बिगड़ा जाता है। तब श्यामाने गरज कर कहा—" गऊ तेरी है हरामखोर ?"

चिदा०—" मेरी नहीं, तो किसकी है ? मैं उसका दूध पीता हूँ, उसका दही खाता हूँ, मक्खन खाता हूँ, घी खाता हूँ ; मेरी तो गऊ है ही। तू केवल पालती है, इसीसे क्या तेरी गऊ हो जायगी ?"

वकीलमें इन बातोंके समझनेकी शक्ति कहाँ ? उसने अदालतसे कहा—" धर्मावतार ! witness hostile ! (गवाह विरोधी

है!) Permission (आज्ञा) दीजिए, मैं उसे cross क्रास (जिरह) करूँगा।"

चिदा०—"क्या? मुझे क्रास करोगे?"

वकील—"हाँ करूँगा!"

चिदा०—"नावसे, या पुल बाँधकर?"

वकील—"इसके क्या माने?"

चिदा०—"अजी वकीलसाहब, उपाधिका पुछल्ला लगने पर भी तुम इतने बड़े हनुमान नहीं हुए कि चिदानन्दसागरको पार कर सको।"

इतना कह चिदानन्द चौबे क्रोधसे काँपते हुए कटहरेसे बाहर जाने लगे—सिपाहीने पकड़कर फिर कटहरेके भीतर कर दिया। तब चिदानन्द लाचार निश्चेष्ट होकर बोले—"करो बाबा क्रास* करो! मैं अथाह समुद्र पड़ा हुआ हूँ—जिसकी इच्छा हो, फाँद जाओ—'अपामिवाधारमनुत्तरंगम' × बना रहूँगा! वकील साहब! यह प्रशान्त महासागर लहरें नहीं लेता, आप खुशीसे उछलिए—फाँदिए।"

तब वकील साहबने अदालतसे कहा—"धर्मावतार, यह आदमी पागल जान पड़ता है। इसे क्रास करनेकी कोई जरूरत नहीं है। पागल होनेके कारण इसका इजहार किसी कामका नहीं; इसे बाहर जानेकी आज्ञा हो।"

---

* क्रास शब्दके दो अर्थ हैं—एक पार करना और दूसरा जिरह करना। × जैसे तरंगहीन समुद्र।

हाकिम चिदानन्दसे छुटकारा चाहते ही थे, उसे बिदा करना चाहते ही थे, इतनेमें श्यामाने हाथ जोड़ कर अदालतसे कहा—" अगर हुकुम हो तो मैं खुद उससे कुछ बातें पूछ लूँ, फिर चाहे बिदा करना हो तो कर दीजिएगा।"

हाकिमने कौतूहलके साथ स्वीकार कर लिया। तब श्यामाने चिदानन्दकी तरफ देखकर कहा—" महाराज! आपकी भंग छननेका समय हुआ कि नहीं?"

चिदा०—" भंगके लिए समय असमय क्या है री—अजरामरवत्प्राज्ञो विद्यां नशां च चिन्तयेत्।"

श्यामा—" इस समय अपना यह अं—बं रहने दो। बतलाओ. भंग पियोगे?"

चिदा०—" ला, दे!"

श्यामा—" अच्छा, पहले मेरी बातका जवाब दो तो ला दूँगी।"

चिदा०—" अच्छा तो जल्दी जल्दी पूछ ले।"

श्यामा—" मैं पूछती हूँ, गऊ किसकी है?"

चिदा०—" गऊ तीन जनोंकी, पहली अवस्थामें गुरु महाशयकी, दूसरी अवस्थामें स्त्रीजातिकी, अन्तिम अवस्थामें उत्तराधिकारीकी, और रस्सी तुड़ाकर भागनेके समय किसीकी भी नहीं।"

श्यामा—" मैं कहती हूँ कि यह शामला गऊ किसकी है?"

चिदा०—" जो उसका दूध पीता है उसकी।"

श्यामा—" यह गऊ मेरी है कि नहीं?"

श्यामा–"इस समय अपना यह अं–बं रहने दो। बतलाओ, भंग पियोगे?"

चिदा०—"ला, दे!"

श्यामा—"अच्छा, पहले मेरी बातका जवाब दो तो दूँगी।"

चिदा०—"अच्छा तो जल्दी जल्दी पूछ ले।"

श्यामा—"मैं पूछती हूँ, गऊ किसकी है?"

चिदा०—गऊ तीन जनोंकी, पहली अवस्थामें गुरु महाशयकी, दूसरी अवस्थामें स्त्रीजातिकी, अन्तिम अवस्थामें उत्तराधिकारीकी; और रस्सी तुड़ाकर भागनेके समय किसीकी भी नहीं।"

श्यामा—"मैं कहती हूँ कि यह शामला गऊ किसकी है?"

चिदा०—"जो उसका दूध पीता है उसकी।"

श्यामा—"यह गऊ मेरी है कि नहीं?"

चिदा०—"तू कभी उसका दूध एक बूँद नहीं पीती, केवल बेंच बेंच कर मरती है, गऊ तेरी कैसी हुई? वह गऊ अगर तेरी है तो बंगालबंकका सब रुपया भी मेरा है। अरी, गऊ इस चोरको दे दे–गरीब आदमी दूध पीकर तुझे असीसेगा।"

हाकिमने देखा, दोनों आदमी बहुत बढ़ाबढ़ी कर रहे हैं, अदालत मछलीवालियोंका बाजार हो रही है। हाकिमने दोनोंको धमकाकर प्रश्न करना बन्द कर दिया। हाकिमने खुद पूछा—"श्यामा इस गऊका दूध बेचती है?"

चिदा०—"जी हाँ।"

हाकिम—"उसके घरमें यह गऊ रहती है?"

चिदा०—"यह गऊ भी रहती है, और कभी कभी मैं भी।"

हाकिम—"यही उसे खिलाती पिलाती है?"

चिदा०—"उसे और मुझे–दोनोंको।"

तब फर्यादीके वकीलने कहा—"मेरा काम होगया—मैं अब उससे कुछ पूछना नहीं चाहता।" यह कह कर वे बैठ गये। तब आसामीके वकील साहब खड़े हुए। उन्हें देखकर चिदानन्दने पूछा—"तुम भैया कौन हो?"

वकील—"मैं आसामीकी तरफसे तुम्हें क्रास करूँगा।"

चिदा०—"एक साहब तो क्रास कर गये—अब तुम कुमारबहादुर आये हो क्या?"

वकील—"कुमारबहादुर कौन?"

चिदा०—"राजकुमारको तुम नहीं पहचानते? त्रेतायुगमें समुद्रको पहले क्रास किया महावीरजीने! उसके बाद क्रास किया कुमारबहादुर (अंगद) ने।"

वकील—"यह कुछ मैं नहीं जानता। तुमने कहा है कि मैं गऊको पहचानता हूँ—कैसे पहचानते हो?"

चिदा०—"कभी सींगसे और कभी शमलेसे!"

वकीलने गुस्सेसे गर्म होकर टेबिल पर हाथ पटक कर कहा—"पागलपन रहने दो—बतलाओ, गऊको किस लक्षणसे पहचानते हो?"

चिदा०—"इसी रंभानेसे।"

वकीलने हताश होकर कहा—"Hopeless!" (नाउम्मेद) और बैठ गये। जिरह करनेका विचार ही छोड़ दिया।

चिदानन्दने विनीत भावसे कहा—"रस्सी क्यों तुड़ाते हो बाबू?"

हाकिमने देखा, वकील जिरह नहीं करेगा; चिदानन्दको छुट्टी दे दी। चिदानन्दने भागकर अदालतके बाहर दम लिया। मैं कुछ अपना काम करके बाहर आया, देखा कि चिदानन्द अपना हुक्का हाथमें लिये बैठा है, चारों तरफ लोग उसे घेरे खड़े हैं—श्यामा भी वहाँ

आगई है। चिदानन्द तिरस्कार करता हुआ उससे कह रहा है--"तुझे अपनी मंगला गऊकी सौगंद, तुझे दूधकी मटकीकी सौगंद, तुझे दूध--दहीकी सौगंद, तुझे अपनी इस थिरकनेवाली नथकी सौगंद, इस चोरको गऊ दे डाल।"

मैंने पूछा—"चौबेजी! यह चोरको गऊ क्यों दे डाले?"

चिदानन्दने कहा—"पूर्व समयमें महाराज श्येनजितसे एक ब्राह्मणने कहा था कि बछड़ा, अहीर और चोर, इनमेंसे जो गऊका दूध पीता है वही उसका यथार्थ अधिकारी है। और किसीका उसपर ममता दिखलाना विडम्बनामात्र है (महाभारत, शान्तिपर्व, १७४ अध्याय)---यह तो हुआ भीष्मपितामहका Hindu Law (हिन्दू-नियम), यही इस समय यूरोपखंडका International Law (अन्तर्जातीय नियम) है। यदि सभ्य और उन्नत होना चाहते हो तो छीनकर खाओ। गो शब्दका अर्थ चाहे गऊ समझो और चाहे पृथ्वी, इसका भोग चोर ही करते हैं! सिकन्दरसे लेकर रणजीतसिंहतक सभी चोर इसके प्रमाण हैं। Right of Conquest (विजयका अधिकार) यदि एक Right (अधिकार) है, तो Right of Theft (चोरीका अधिकार) क्या एक Right नहीं है? अतएव हे श्यामा गोपी! तुम आईनके माफिक काम करो। ऐतिहासिक राजनीतिको मानो। चोरको गऊ दे डालो।"

इतना कहकर चिदानन्द वहाँसे चला गया। देखा, वह बिलकुल ही पागल हो गया है।

समाप्त।